॥ ओ३म् ॥

चक्रव्यूह

सुभाष चन्द्र जसूजा
एम.ए.एल.एल.बी. एडवोकेट
फाजिलका

॥ ओ३म् ॥

वैदिक साहित्य ग्रन्थ माला

पुष्प संख्या 18 (अठारह)

चक्रव्यूह

लेखक :–

आनन्द अभिलाषी

आर्य वान प्रस्थ आश्रम ज्वालापुर

पूर्वनाम : सुभाष चन्द्र जसूजा

एम.ए.एल.एल.बी. एडवोकेट

फाजिलका

प्रकाशक : वैदिक साहित्य प्रकाशन

कृष्ण निवास फाजिलका

प्रथम बार 1000

मूल्य:– वैदिक साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का मूल्य

पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना ही है।

जन्म 27.9.63 स्वर्गवास 24.2.87

स्वर्गीय श्री अजय कुमार चावला

एडवोकेट फिरोजपुर

की पुण्य स्मृति में

दिवंगत आत्मा की शान्ति हेतु

पिता	माता
अर्जुन सिंह चावला	स्वर्णा चावला
एडवोकेट	प्रधान स्त्री सभा
प्रधान हिन्दु सभा	लुधियाना रोड
फिरोजपुर छावनी	फिरोजपुर

आभार प्रदर्शन

1. चौ० राजेन्द्र लाल न्यू देहली	1000—00
2. ला० गोबिन्द लाल मैमोरियल सोसाईटी चण्डीगढ़	500—00
3. श्री नानक चन्द वाटस प्रधान आर्य समाज जलालाबाद	301—00
4. गुप्त दान	250—00
5. आर्य समाज सैक्टर 27 चण्डीगढ़	250—00
6. श्री वेद प्रकाश आर्य मलोट	101—00
7. डा० विजय वर्मा मलोट	100—00
8. श्रीमती कृष्णा ठक्कर मुरादाबाद	100—00
9. श्रीमती पूनम गुलाटी मुरादाबाद	100—00
10. श्री हंस राज खुराना सूरत	100—00
11. श्री देव राज तनेजा देहली	100—00
12. श्री अतुल असीजा एडवोकेट अबोहर	50—00

पुस्तक प्राप्ति के लिए सम्पर्क :

1. सुभाष चन्द्र जसूजा एडवोकेट
कृष्ण निवास फाजिलका
दूरभाष 62722, 62326

2. डा० नवदीप जसूजा
चन्द्रावती होसपिटल शास्त्री चौक
फाजिलका दूरभाष 62601

3. डा० सिम्मी जसूजा
चन्द्रावती स्कैन सैंटर , फाजिलका
दूरभाष 62326

विषय सूचि

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
	सर्मपण	
प्रथम	चक्रव्यूह	1
द्वितीय	द्वेष	4
तृतीय	मोह	10
चतुर्थ	लोभ	18
पंचम	काम	25
षष्टम	क्रोध	32
सप्तम	अंहकार	39
अष्टम	परमानन्द	43
नवम	कृतज्ञता	48

सर्मपण

डॉ० गुरुबख्श लाल आहुजा

एक सूर्य जो कभी अस्त न होगा।

26 मार्च 1996 का दिन एक कहर का और कयामत का दिन था जिस दिन डॉ० गुरुबख्श लाल आहुजा, फाजिलका जिला फिरोजपुर (पंजाब) का एक सुप्रसिद्ध डाक्टर हम से रुठकर चला गया। वह रात एक प्रलय की रात थी। सब तरफ चीख, पुकार, रोना–धोना, बच्चों की बिलखन से वातावरण शोकग्रस्त था। मां कह रही थी मेरा लाल गया। पिता कह रहा था मेरा पुत्र गया। भाई रो रहे थे हमारा राम गया। पत्नी रो रही थी मेरा सुहाग गया। बहन रो रही थी मेरा भाई गया। बच्चे रो रहे थे हमारा भविष्य गया, हमारी नैया का खेवनहार गया।

जब भी किसी व्यक्ति का देहान्त होता है हमेशा ऐसा ही वातावरण पैदा हो जाता है। पर इस मृत्यु में एक अन्य विशेषता थी कि केवल मित्र या सगे सम्बन्धी ही शोकातुर नही थे सारा फाजिलका नगर रो रहा था और जैसे जैसे यह दु:खद समाचार फैलता गया पंजाब का हर डाक्टर रोया। लाईन्स कल्ब का हर मैम्बर, राम शरणम का हर भक्त ओखों में आंसू भर लाया क्योंकि केवल डॉ० गुरुबख्श लाल के शरीर का अन्त ही नही हुआ था बल्कि एक पवित्र आत्मा, परोपकारी, दानी एवं धार्मिक वृति वाला व्यक्ति इस संसार से सदा के लिए चल दिया था।

डॉ० गुरुबख्श लाल जी आहुजा जिनको प्राय: डॉ० जी०एल० आहुजा के नाम से जाना जाता था का जन्म फाजिलका में ही 10–09–1947 को हुआ।

पिता श्री मिलख राज के इस यशस्वी पुत्र ने जी.ए.एम.एस. पास करके फाजिलका शहर में ही डाक्टरी का व्यवसाय शुरु किया। थोड़े ही दिनों में डॉक्टर आहुजा का नाम नगर के सुप्रसिद्ध डाक्टरों में गिना जाने लगा। जहां वह एंक मेहनती डाक्टर थे वहां परमात्मा की उन पर एक और कृपा थी कि प्रायः हर रोगी को उनकी दी हुई दवाई से आराम भी आता था। ''शफा उनके हाथों में '' यह आवाज हर एक की जुबान पर थी। 1995 में एक अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सक गोष्ठी देहली में हुई। इसमें केवल एक भारतीय जी.ए.एम.एस. डाक्टर को अपने विचार रखने का सुअवसर दिया गया और वह व्यक्ति अन्य कोई नही था डॉ० आहुजा थे जिन्होने हृदय रोग और आयुर्वेद के विषय पर अपने विचार प्रकट किये जिसके फलस्वरुप उन्हें स्वर्ण पदक Gold Medal से सम्मानित किया गया। NIMA अर्थात National Integrated Medical Association की पंजाब शाखा के उपाध्यक्ष रहे और फाजिलका की NIMA ब्रांच के वह सदा सरंक्षक रहे। 1996 फरवरी में दिल्ली में हुई उस गोष्ठी में उन्हे केवल सम्मानित ही नही किया गया बल्कि उन्हें I.M.A. और N.I.M.A. में सम्पर्क स्थापित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर Co-Ordinator नियुक्त किया गया। उस गोष्ठी में कई व्यक्तियों को सम्मान पत्र डॉ० आहुजा के हस्ताक्षरों द्वारा दिये गये। यह भी निश्चय हुआ कि एक पत्रिका का प्रकाशन किया जावे जिसमें केवल वह ही लेख प्रकाशित किये जायेगें जिसकी स्वीकृति डॉ० आहुजा दें।

डॉ०आहुजा का शुभ विवाह आयुष्मती शशी सुपुत्री श्री हाकम राय अलाहाबादी सहारनपुर निवासी के साथ तिथि 25-11-1975 को सम्पन्न हुआ। वैसे तो फाजिलका में ब्याही आने पर वह फाजिलका की भाभी और पुत्र वधु है पर अपने मीठे स्वभाव के कारण उसने हर युवक एवं युवती से सगी बहन का सा और हर बुजुर्ग से बेटी का सा प्यार और स्नेह पाया। डॉ० आहुजा को एक देवी के रुप में पत्नी मिली जिसने सास ससुर को माता पिता जानकर, देवर-ज्येष्ठ को भाई-बहन मानकर सेवा की और प्यार-स्नेह दिया। सुशीला कोमल हृदया, मिलनसार स्वभाव, मृदुभाषी श्रीमती शशी आहुजा ने अपने तप, त्याग, तपस्या, धार्मिक वृति एवं पवित्रता के कारण फाजिलका नगर में एक अद्वितीय सामाजिक स्थान पाया। इस मंगलमय जोड़ी ने तीन पुत्रीयों चारु, शैली, शिवानी एवं एक पुत्र शिवाल को जन्म दिया। दुर्भागयवश बड़ी पुत्री चारु अभी चार वर्ष की हुई थी कि एक

दुर्घटनावश उसकी मृत्यु हो गई।

दान, परोपकार, धार्मिक वृति, दूसरे की पीड़ा से स्वयं दु:खी होना और उस पीड़ा का निवारण करना तथा सेवा करना, यह था डॉ० आहुजा का जीवन और उनकी प्रेरणा स्रोत थी उनकी सुपत्नी श्रीमती शशी।

कोई भी व्यक्ति किसी संस्था के लिये दान लेने गया खाली हाथ नही आया। बिन मांगे भी किसी असहाय को सिलाई मशीन देना, किसी की पुत्री के विवाह के लिये आर्थिक सहयोग देना, किसी निर्धन विधार्थी को शिक्षा के लिये पुस्तकें लेकर देना या उसकी स्कूल की फीस देना तो उनके लिये साधारण सी बात थी। बहुत से रोगीयों की जो असहाय थे बिना शुल्क लिये चिकित्सा करते थे। बल्कि दवाई के पैसे भी न लेते थे। डी.ए.वी.सी.सै.स्कूल फाजिलका एवं लाला हरिकृषण दास स्मारक हस्पताल फाजिलका के लिये हर साल आर्थिक सहयोग देना तो उनका स्वभाव ही बन गया था। मुझ लेखक की हर पुस्तक में उनका सहयोग होता था बल्कि मेरी पुस्तक ''जीने की कला'' पुष्प सख्या नं:2 के प्रकाशन का सारा भार उन्होने उठाया था।

मृत्यु से कुछ देर ही पहले उनके मन में एक बहुत ही सुन्दर योजना चल रही थी कि एक अपने पितरों पूर्वजों की स्मृति में एक धर्मार्थ हस्पताल एवं लिबारट्री फाजिलका में खोली जाये, जिसमें हर प्रकार की सुविधा, एक्सरे, ई.सी.जी. इत्यादि उपलब्ध हों बल्कि विशेष डाक्टरों की उन्होने नियुक्ति भी कर दी थी। पर शायद भाग्य को यह स्वीकार नही था।

लाईन्स कल्ब फाजिलका विशाल के वह सक्रिय सभासद थे। बहुत साल उपप्रधान रहे। उनसे बहुत आग्रह किया गया कि वह र्निविरोध प्रधान पद को ग्रहण करें पर वह कहते थे कि मुझे पद की इच्छा नही। बिना पद के ही जो काम मेरे जिम्मे लगेगा कर दूंगा। कोई भी स्वास्थ्य कैम्प हो, आँखें का कैम्प हो डाक्टर साहब संयोजक हुआ करते थे। इतना अधिक काम करते थे कि सफलता का श्रेय यदि उनको न दिया जाये तो उनके प्रति कृतघनता होगी। कभी पुलिस अधिकारियों के पास जा रहे हैं, कभी बी.डी.ओ. साहब के पास और कभी पंचायत सम्मति अधिकारियों के पास। धुन केवल एक ही होती थी कि अधिक से अधिक लोग कैम्प द्वारा लाभान्वित हो सकें। केवल लाइन्स कल्ब ही नही अपितु और भी बहुत सी स्वयं सेवी संस्थाओं, मानव कल्याण सभा इत्यादि के भी सक्रिय सदस्य

रहे।

जहां मन में कोमलता थी वहां मन में धर्म की भावना भी थी। राम श्रणम् के पुजारी थे। हर साधना शिविर में बढ़–चढ़ कर भाग लेते थे। राम नाम का जाप भी करते थे और राम जैसा आदर्श जीवन भी व्यतीत करते थे। माता–पिता के हर वचन को शिरोधार्य करते थे। राम शरणम् वाले भी उपकार का कार्यक्रम करने में बहुत सक्रिय हैं। वे लोग कभी निर्धन लड़कियों का विवाह करते हैं, कभी आँखों का कैम्प लगाते हैं। डाक्टर साहब न केवल उनको आर्थिक सहयोग देते थे बल्कि तन, मन और धन से सेवा करते थे। अपनी डाक्टरी छोड़कर वह सारा समय इसी परोपकार में ही व्यतीत करते थे। न केवल स्वयं धन से सेवा करते थे बल्कि अपने सगे–सम्बन्धियों से भी धन इकटठ्ा करवाते थे। कभी NIMA वालों को प्रेरित करते थे तो कभी लाईन्स कल्ब के सदस्यों को कहते थे कि राम शरणम् की परोपकारी योजना में आर्थिक,मानसिक एवं शारीरिक सहयोग देना है। राम शरणम् के पुजारी होते हुये भी अन्य धार्मिक संस्थाओं के हर उत्सव में बढ़–चढ़ कर भाग लेते थे। शायद ही कोई ऐसा वर्ष हो जब उन्होने आर्य समाज फाजिलका के वार्षिक उत्सव में तन, मन और धन से सहयोग न दिया हो।

डाक्टर साहब के मुझ लेखक के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध थे। कहने को वह मेरा मित्र था पर वह वास्तव में मेरा छोटा भाई था। और जैसे एक बड़े भाई का सम्मान किया जाता है। वैसे ही वह मेरा आदर करते थे। वह कहा करते थे कि आहुजा और जसूजा में कोई अन्तर नही और केवल वाणी द्वारा कहते ही न थे बल्कि क्रियात्मक रुप में इस धारणा में पूरे भी उतरते थे। मेरी बात पसन्द आ गई तो मान लेते थे पर यदि न भी पसन्द आती तो फिर भी मानते थे और कहते कि जसूजा साहब की किसी बात से इन्कार नही कर सकता। जितना निकट हो कर मैने उन्हे देखा और उनके व्यक्तित्व को देखा मैं यह समझता हूं कि वह देवता पुरुष थे। कोई भी व्यसन उनके जीवन में न था। न शराब, न मीट और न किसी प्रकार का नशा। हर प्रकार के अभिशाप से कोसों दूर थे। न मोह, न लोभ, न क्रोध, न अहंकार, न ईर्ष्या, न द्वेष। परिवार जनों के साथ, मित्र जनों के साथ स्नेह तो था पर यह स्नेह मोह की सीमा को छू न सका। मोह तो उन्हें अपने आप के साथ भी न था। लोभ का उनके जीवन में स्थान ही न था। जो व्यक्ति हर समय दान और परोपकार की सोचता हो वह लोभी कैसेहो सकता है। हर समय

प्रसन्न रहना उनके जीवन का एक अटूट अंग था । लोग उन्हें एक मस्त व्यक्ति कहा करते थे। इसलिये क्रोध के लिये उनके जीवन में कोई स्थान न था। पर अपने स्वाभिमान (Self Respect) को सदा बनाये रखते थे। मन्यु उनके व्यवहार का आवश्यक अंग था। उनके चरित्र की सफेद चादर पर छोटा सा भी दाग नही लगा और उन्होने एक उच्च आदर्श अपनाया। न जाने फिर क्यों मृत्यु ने इत्नी जल्दी उन्हें अपने चक्रव्यूह में ले लिया। आज डॉ० आहुजा हमारे मध्य में नही। उनके शरीर का अन्त हो चुका है। मैने स्वयं उनकी चिता को जलते देखा पर क्या वह सचमुच मर गये।

सभी अहले दुनिया यह कहते हैं हमसे।
कि आता नही कोई मुल्क अदम से।।

पर नही। ऐसा व्यक्ति कभी नही मर सकता। वह तो अपने गुण, स्वभाव और कर्मो के कारण सदा अमर रहेंगे। फाजिलका के लोग उन्हें कभी नही भूल सकते।

एक आदर्श व्यक्ति कैसा होना चाहिये :–
ऋग्वेद में एक मन्त्र है :

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्या चन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताध्नता जानता संगमेंमहि।।

भावार्थ यह है कि हम सदा कल्याण के मार्ग पर चलें। सूर्य और चन्द्रमा जैसा हमारा व्यवहार हो। दान देते रहें कभी किसी के प्रति हिंसा का भाव न रखें और हमारा साथ सदा ज्ञानी और विद्वान पुरुषों का हो। डॉ० आहुजा इस कसौटी पर पूरे उतरते थे। सर्वदा कल्याण के मार्ग पर चले। सूर्य की भांति चमके। सूर्य रोशनी देता है। ज्ञान का प्रतीक है और अंधकार को दूर करता है। फसलों को पकाता है, वर्षा का साधन है। बीमारी हटाता है। समय का पाबन्द है। जीवन नियमित है, कभी कोताही नही। ठीक यही हाल डॉ० आहुजा का था। आहुजा परिवार का यह सुर्य समय का पाबन्द था। हर कार्य नियमानुसार बिना किसी आलस्य ही से होता था। सूर्य का भांति डॉ० आहुजा साहब ने परोपकार किया दूसरे के काम आये। जहां वह सूर्य की भांति चमके वहां वह चन्द्रमा की भांति शीतल स्वभाव थे। दान देने में सदा आगे थे। अहिंसा के पुजारी थे और उनका

संग हमेशा ज्ञानवान पुरुषों का था।

आहुजा परिवार का यह सूर्य सदा चमकता रहेगा कभी अस्त न होगा।

जाते हो तो जाओ हम भी यहां।
यादों के सहारे जी लेंगे।।

इन शब्दों के साथ अपनी यह पुस्तक मैं अपने प्रिय गुरुबख्श को बड़े स्नेह और श्रद्धा के साथ समर्पित करता हूं और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और हमें इस दुःख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे। जो स्थान वह रिक्त कर गये हैं उसकी किसी प्रकार से भी पूर्ति नही हो सकती। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह पवित्र आत्मा पुकार कर पुकार कह रही है –

मेरी याद में तुम न आंसू बहाना
न जी को जलाना मुझे भूल जाना
समझना कि था इक सपना सुहाना
वह गुजरा जमाना, मुझे भूल जाना
मेरी याद में तुम न आंसू बहाना।

तिथि : 3–4–96 **सुभाष चन्द्र जसूजा**

प्रथम अध्याय

चक्रव्यूह

चलो इतिहास के पन्नों को पलटें। महाभारत में कौरव और पाण्डवों के मध्य में हो रहे युद्ध में कौरव सेना पराजय का मुंह देख रही थी। बहुत विचार करके यह निर्णय लिया गया कि चक्रव्यूह रचा जाये। चक्रव्यूह रचा गया और परिणाम स्वरुप अभिमन्यु को जीवन से हाथ धोना पड़ा। एक बड़ी क्षति पहुंची पांडव सेना को। ऐसा क्यों हुआ? अभिमन्यु एक चक्र को तोड़ता तो दूसरे के सामने आ जाता, दूसरा तोड़ता तो तीसरा इत्यादि। और फिर जब सब चक्रों को तोड़ चुका तो उसे चक्रव्यूह से बाहर निकलना नही आया। उसने अपनी माता के गर्भ में पिता से चक्रव्यूह तोड़ने की विधि तो जानी थी पर पिता जब चक्रव्यूह से निकलने की विधि समझा रहे थे तो माता को नींद आ गई और वीर अभिमन्यु को चक्रव्यूह से बाहर निकलने के मार्ग का ज्ञान न हो सका।

ठीक यही हाल हमारा भी है। हम इस संसार में एक से बढ़ कर एक चक्र में फंसे हैं। कभी मोह का चक्र है तो कभी द्वेष का। जो इन चक्रों में फंस जाते हैं उनकी नैया मझधार में डूब जाती है। कुछ लोग वीर अभिमन्यु की भांति कुछ चक्रों को तोड़ देते हैं। वह यह चक्र कैसे तोड़ते हैं ? जैसे वीर अभिमन्यु ने माता के गर्भ में विधि सीखी थी। उसी प्रकार जो लोग प्रवचन सुनते हैं, वेदाध्ययन करते हैं, धार्मिक पुस्तकें पढ़ते हैं वह इन चक्रों को तोड़ देते हैं। पर अभिमन्यु पूरा ज्ञान प्राप्त न कर सका और अन्ततः फंस गया। जो लोग इन चक्रों से बच निकलने का पूरा ज्ञान प्राप्त नही करते वह इन्ही बन्धनों का फिर शिकार हो जाते हैं।

मनुष्य इच्छा तो करता है कि उसकी छवि एक महापुरुष जैसी हो। लोग उसे महात्मा जानें। उच्च आत्मा के नाम से पुकारें। स्वपन तो लेता है देवता बनने का पर उसके कर्म, गुण और स्वभाव ऐसे हैं कि वह मनुष्य बनने के योग्य भी नही। पशुता समाई रहती है। कई बार तो मनुष्य ऐसे घिनौने कर्म करता है कि उसको पशु कहना पशु का निरादर करना है। पशु तो कइ बार सयंम, स्नेह, कृतज्ञता और वफादारी में मनुष्य से बहुत आगे बढ़ जाता है। ऐसे समय में मनुष्य

को राक्षस की उपाधि देने के सिवाय और कोइ चारा भी नही रहता। इसलिये वेद कहता है "मनुर्भव" अर्थात हे प्राणी तूं मानव बन सच्चे अर्थो में मनुष्य बन।

एक धनी व्यक्ति के निवास स्थान पर सब कुछ विदेशी था। विदेशी कार, विदेशी फर्नीचर, सुन्दर कपड़े, कमरों में सुन्दर सजावट। घर क्या था एक महल था। अचानक उस घर को आग लग गई। बिजली के चले जाने पर उस घर में मोमबत्ती जलाने तक की भी आज्ञा नही थी ताकि कही दीवारों की पालिश का रंग फीका न पड़ जाये। अब वही दीवारें आग से काली हो गई थी। जिस फर्नीचर पर पालिश इतनी चमकती थी कि व्यक्ति अपना चेहरा देख सकता था, वही फर्नीचर भस्म होकर राख हो गया था। धनी व्यक्ति बाहर आ गया और देखते ही देखते सब कुछ मिटट्री में मिल गया। अब पड़ौसी, मित्र, सगे–सम्बन्धी उसके पास शोक बांटने के लिये आये। धनी के मन में कोई शोक न था। उसने कहा कि मैंने फर्नीचर, कोठी, कार हर वस्तु का बीमा करवाया हुआ था। हर मास निश्चित बीमा धन राशि दे देता था। मेरे पास पुरानी कोठी थी अब बीमे वाले नई कोठी बनवा देंगे। कार पुरानी हो गई थी अब नई मिल जायेगी। ठीक यही हाल हमारे जीवन का है। जो व्यक्ति सुकर्म रुपी प्रीमियम अदा करता है, छल कपट से दूर रहता है, दान देता है, परोपकार करता है, जब उसकी आत्मा के निवास स्थान अर्थात शरीर को आग लगती है तब उस जीव को कुछ कष्ट नही होता। वह जानता है कि सुकर्मो के कारण उसे पहले से अच्छा मानव चोला मिलेगा। यदि धनी व्यक्ति ने बीमा न करवाया होता तो उसने दहाड़ें मार कर रोना था कि मैं लुट गया मेरा सब कुछ नष्ट हो गया। मेरा बैंक बेलेन्स भी नही कि नई कोठी बना लूं या कार खरीद लूं। जिस व्यक्ति ने कर्म रुपी बैलेन्स इकटठ़ा नही किया, सुकर्म करके अपने भविष्य को सुनिश्चित नही किया वह मृत्यु के समय रोकर इसी प्रकार विलाप करेगा क्योंकि वह जानता है कि उसे मनुष्य जन्म दोबारा मिलने वाला नही।

सुकर्म करने की प्रेरणा कब मिलती है, जब मनुष्य मोह त्यागता है। सुकर्म करने के लिये मनोबल कब बढ़ता है, जब मनुष्य लोभ छोड़ता है। सुकर्म करने की शक्ति कब आती है, जब मनुष्य काम वासना पर काबू पाता है। सुकम्र करने के लिये जीव प्रभु की कृपा का पात्र कब बनता है, जब क्रोध पर नियन्त्रण पाता है। सुकर्म कब सार्थक होते हैं, जब मनुष्य अंहकार को छोड़ता है। सुकर्मो की वर्षा

तब ही रंग लायेगी और जीवन में हरियाली लायेगीऔर आनन्द पैदा करेगी जब द्वेष मन से निकलेगा। सो सुखमय, आन्नदमय, सार्थक जीवन बिताने के लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार, द्वेष आदि के चक्रों से निकलना होगा। इस चक्रव्यूह को तोड़ना होगा। हर चक्र से बाहर आना होगा।

इन चक्रों से कैसे बाहर आया जाये ? चक्रव्यूह को कैसे तोड़ा जाये ? इस समस्या का समाधान वैदिक संध्या के मनसा परिक्रमा के मंत्रों में दिया गया है। मनसा परिक्रमा का अर्थ है बुद्धि द्वारा मनुष्य परखे कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है ? यदि अच्छा है तो कैसे अपनाया जाये और यदि बुरा है तो कैसे छुटकारा पाया जाये ? कैसे बुराईयां जन्म लेती हैं और कैसे यह समाप्त की जा सकती हैं ? इन मंत्रों में कर्म, उपासना और ज्ञान भी है। कर्म से मनुष्य परोपकार करता है जिससे हर प्राणी प्रसन्न होता है। उपासना और ज्ञान से आत्मा को आन्नद की प्राप्ति होती है। इन मंत्रों द्वारा यह तीनों गुण व्यक्ति में पैदा होते हैं।

द्वितीय अध्याय

योऽ३स्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

जो हमसे द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं उस द्वेष भाव को भगवान हम आपकी विनाश शक्ति के सामने रखते हैं।

मनसा परिक्रमा के कुल छः मंत्र हैं और हर मंत्र के अंत में ऊपर लिखे यो३स्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्त वो जम्भे दध्मः शब्द आते हैं। इसी बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि द्वेष मनुष्य का सबसे बड़ा घातक और शत्रु है। वास्तव में वासना बीज है, राग द्वेष जड़ है। सत् रंज–तम तने हैं और उन तीनों की पांच शाखायें हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंहकार। फिर एक एक शाखा में बीसीयों उप शाखायें और एक एक सहत्र पत्ते, सैंकड़ों फल और उनमें सैंकड़ों बीज पैदा होते हैं। अब कोई कहे कि बीज को नष्ट कर दें तो बीज समाप्त हो गया। फल को काट देंगे तो फल दोबारा पैदा हो जायेगा। पत्तों को काटेंगे तो, उप शाखाओं को काटेंगे, तने को काटेंगे सब दोबारा पैदा हो जायेगी। पर यदि उस वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर फैंक दिया जाये तब तो सर्वनाश हो जायेगा। जड़ क्या है ? राग द्वेष। राग द्वेष को समाप्त करना होगा। तभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार आदि व्यसनों की समाप्ति होगी। जब तक द्वेष जड़ से नही उखड़ेगा यह दुर्व्यसन बराबर पैदा होते रहेगें। जब मनुष्यों इन व्यसनों को छोड़कर निर्मल जीवन व्यतीत कर रहा होता है तो द्वेष से यह संस्कार फिर पनप जाते हैं। और फिर वही पुरानी दशा हो जाती है।

केकई राम को भरत जितना ही प्यार करती थी पर जब द्वेष की अग्नि प्रज्वलित हो गई कि राम को क्यों राज्य मिल रहा है भरत को क्यों नही तो द्वेष ने मोह को जन्म दिया और फिर मोह वश केकई ने राम के लिये बनवास और भरत के लिये राज्य मांगा। परिणाम सबको विदित है। एक व्यक्ति एक अच्छे मकान में रहता है। सुखी परिवार है, धार्मिक जीवन है, पर जब पड़ौसी अपने मकान को तोड़ कर उसे कोठी की शकल दे देता है तो यदि द्वेष पैदा हो गया तो वह भी कोठी बनाने की धुन में पड़ जायेगा। अवैध ढेग से कमाई करेगा। लोभ का

शिकार हो जायेगा। एक कार चालक बड़े आराम से कार चला रहा है। उसकी नई कार है परन्तु पुरानी कार वाला एक और कार चालक उसका पीछा करता है और अपनी कार को आगे ले जाता है। अब द्वेष की भावना पैदा हो गई कि मेरी तो नई कार है और पुरानी कार आगे निकल गई। द्वेष पैदा हो गया। कार को और तेज किया। क्रोध आ गया कि इसको नीचा दिखा कर रहूंगा। दोनों क्रोध में पागल हो रहे हैं। रेस पर रेस दिये जा रहे हैं। परिणाम स्वरुप एक सामने आते ट्रक से टक्कर हो जाती है और दोनों ही मर जाते हैं। ट्रक वाला भी जखमी हो जाता है।

तानसेन अकबर बादशाह के नौ रत्नों में से एक था। बादशाह उसे संगीत सम्राट की उपाधि से अलकृत करना चाहता था। तानसेन को हर समय यही डर था कि कहीं कोई और संगीतज्ञ उसके रास्ते में रुकावट बनकर खड़ा न हो जाये। इस लिये वह हर गायक से द्वेष करने लगा गया और अन्त में यह द्वेष अंहकार का रुप धारण कर गया। जब कोई भी उसका मुकाबला न कर सका तो अंहकार की सीमा इस हद तक बढ़ गई कि अकबर बादशाह ने कानून बना दिया कि कोई व्यक्ति तानसेन के निवास स्थान के सामने से गाता हुआ नही जायेगा और कोई गीत गाता हुआ चला गया तो उसे तानसेन से संगीत का मुकाबला करना होगा। और जो पराजित होगा उसका गला काट दिया जायेगा। संयोग वश कुछ प्रभु भक्त तानसेन की कोठी के आगे से प्रभु भक्ति के भजन गाते जा रहे थे कि पुलिस के एक सिपाही ने उन्हे रोक लिया और बन्दी बना लिया। कानून से अवगत कराया और मुकाबले के लिये तानसेन के पास ले गये। भक्तों ने कहा कि वे तो केवल भजन गा रहे थे। उनका सेगीत से कोई वास्ता नही पर कौन सुनता है। उन्हें तानसेन के सामने गाना पड़ा। मुकाबला हुआ उनकी हार हुई और हार के बाद उन सबके गले काट दिये गये। उन में से एक भक्त का चार–पांच साल का बच्चा भी साथ था। उसने अपने पिता की मौत अपनी आँखों से देखी। पिता की मौत का बदला लेने का निश्चय किया। सीधा संगीत गुरु जी के पास गया और बोला कि मैं संगीत सीखना चाहता हूं और गुरु जी से यह भी कहा कि चाहे कितना भी समय लग जाये, मेरा उददेश्य तानसेन को पराजित करने का है। मैंने संगीत विद्या में निपुण होना है और फिर रो रो कर अपनी दुःख भरी कहानी गुरु जी को सुनाई। गुरु जी ने कहा कि बेटा संगीत में निपुण होने के लिये

बारह वर्ष का समय लगेगा। बालक ने कहा कोई बात नही मैं पूरा समय लगाऊंगा और जो मन में निश्चय किया है कि संगीत में तानसेन को पराजित करना है, उसे पूरा करुंगा। उस बालक ने गुरु जी से पूरे बारह वर्ष संगीत शिक्षा प्राप्त की। जब गुरु जी ने कहा कि तू संगीत विद्या को पूरी तरह से सीख गया है, तो उसने गुरु जी से आज्ञा मांगी। गुरु जी ने आज्ञा देने से पहले कहा कि गुरु को दक्षिणा दो। बालक ने कहा, हां गुरु जी क्या गुरु दक्षिणा दूं ? गुरु का उत्तर था, बेटा संगीत मन की प्रसन्नता एवं आत्मा के आन्नद का साधन है , किसी की जान लेने का हथियार नही। यदि तुम तानसेन को जीतना चाहते हो तो तुम संगीत विद्या में तानसेन से बहुत ऊपर उठ जाओगे, पर जीत फिर भी न सकोगे, क्योंकि तुम्हारे मन में तानसेन के प्रति द्वेष है। द्वेष को द्वेष नही मारता । द्वेष की भावना छोड़कर जाओ अवश्य तुम्हारी जीत होगी। बस यही मेरी गुरु दक्षिणा है कि तानसेन के प्रति द्वेष छोड़ दो ताकि तुम उसको पराजित कर सको।

गुरु दक्षिणा देकर शिष्य विदा हुआ। तानसेन के निवास स्थान पर जाकर उसने अपना गीत शुरु किया। उसी प्रकार उसे बन्दी बना लिया गया। उसे बताया गया कि यहां का क्या कानून है। तानसेन के सामने पेश किया गया। उसने तानसेन से मुकाबले की स्वीकृति दे दी। मुकाबले के लिये एक वन स्थल चुना गया। पहले बन्दी को आदेश दिया गया कि तुम अपना संगीत सुनाओ। उसने संगीत सुनाया। संगीत की मधुर तान सुनकर बारह हिरन सभा के पास मुग्ध होकर संगीत का आनन्द उठाने लगे। बन्दी ने उठ कर अपने गले की मालायें उतारी और एक-एक करके हर हिरन के गले में डाल दीं और फिर संगीत बन्द कर दिया। सभी हिरन भाग खड़े हुए और जंगल की ओर चले गये। अब बारी थी तानसेन की। तानसेन को बन्दी ने चुनौती दी कि यदि तुम्हारे संगीत में जान है तो इन हिरनों को वापिस बुलाकर मेरी मालायें लौटा दो। तानसेन ने संगीत अलापा। पर एक भी हिरन वापिस नही लौटा। बहुत देर तक संगीत चलता रहा पर ध्येय की प्राप्ति नही हुई। अन्ततः तानसेन ने पराजय स्वीकार कर ली। पर फिर एक और शर्त रखी कि तुम तब विजयी घोषित किये जाओगे जब तुम उन मृगों को वापिस बुलाकर उनके गले से मालायें उतार सको। बन्दी ने एक बार फिर चुनौति स्वीकार की। उसने फिर संगीत शुरु किया धीरे-धीरे वही मृग आकर मुग्ध होकर संगीत सुनने लग पड़े। बन्दी ने फिर धीरे से उठ कर उन

मस्त मृगों के गले से माला उठाकर अपने गले में डाल ली और फिर संगीत बन्द कर दिया। मृग पहले की भांति फिर जंगल में भाग गये। इस प्रकार बन्दी विजयी घोषित हुआ। वह व्यक्ति कोइ और नही था, बैजू बावरा था। तानसेन ने कहा बेटा शाबाश मैं तुम्हारी विद्या की कदर करता हूं। मेरा सिर हाजिर है। पर बैजू का एक उत्तर था कि मेरी एक इच्छा है कि इस चुनौती के कानून को बंद कर दिया जाये। संगीत को बन्दी बनाकर न रखा जाये। संगीत को स्वतंत्र कर दिया जावे और फिर ऐसा ही हुआ। तानसेन के द्वेष ने उसमे अंहकार भर दिया अैर बैजू तब ही जीत सका, जब उसने द्वेष का त्याग किया।

द्वेष जन्म देता है काम को। सीता को कदाचित काम वासना की पूर्ति के लिये नही उठाया गया। उसे रावण ने अपनी बहन के नाक काटे जाने पर जो उसका अपमान हुआ था, उस अपमान का बदला चुकाने फलरूवरुप उठाया था। सभी व्यक्ति, सम्बन्धी, हितैषी रावण को समझा रहे थे कि सीता को मुक्त कर दो। रावण को राम की छवि का वर्णन किया जा रहा है कि वह महापुरुष है। उसके पास सेना है, उसका धर्म का मार्ग है इत्यादि। अब रावण को राम के प्रति द्वेष पैदा हो जाता है। अब सोचता है कि राम मुझसे अच्छा कैसे हो सकता है। और यह द्वेष जन्म देता है काम वासना को। रावण सीता से शादी रचा लेने की योजना बनाता है। द्वेष क्या कुछ पैदा नही करता । लोभ, मोह, अंहकार, क्रोध, काम सब इसी की उपज है। द्वेष से मनुष्य क्या-क्या नही कर बैठता। कत्ल तक हो जाते हैं। क्या-क्या पाप होते हैं, गणना नही की जा सकती। मनुष्य के अन्दर बहुत पशु प्रवृतियां हैं और जब द्वेष जागता है, उसमें कुत्ते की प्रवृति जाग जाती है। कुत्ते का कुत्ता वैरी बड़ी विख्यात बात है। किसी कमरे में सात बकरियां बांध दो और रात्रि को दरवाजा बन्द कर दो। वहां उस कमरे में उतना घास डाल दो जितना छः बकरियों के लिये पर्याप्त हो। बकरियां आराम से उस घास को खा कर सो जायेंगी। एक का मुंह दूसरी के शरीर पर होगा। क्यों ? क्योंकि उनके मन में सहृदयता है। अब उसी कमरे में अगले दिन सात कुत्ते बांध दो और उनके लिये उतना मांस डाल दो जितना आठ कुत्तें के लिये पर्याप्त हो। सारी रात कुत्ते लड़ते रहेंगे। न स्वयं सोयेंगे न आप को सोने देंगे। प्रातः जाकर देखें कि खाद्य सामग्री पूरी की पूरी बची पड़ी है और सब एक दूसरे से लड़ कर लहू लुहान हुए पड़े हैं। ऐसा क्यों ? क्योंकि कुत्तों में द्वेष है। मनुष्य में जब द्वेष जन्म लेता है तो मानों

उसमें पशुवृति फिर से जाग पड़ी है, जिसकों दबाने की आवश्यकता है। मनुष्य को तो इन्सान बनना है।

फरिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें लगती है मेहनत ज्यादा।।

इन्सान बनने के लिये मेहनत तो करनी पड़ेगी। पशु वुतियों को दबाना ही पड़ेगा।

इन्सान बनो।
करलो भलाई का कोई काम।।
इन्सान बनो।
दुनिया से चले जाओगे।।
रह जायेगा बस नाम।
इन्सान बनो।।

द्वेष और स्पर्धा में जमीन–आसमान का अन्तर है। जब तक स्पर्धा न होगी, मनुष्य उन्नति नही कर सकता। मेरे घर में बिजली नही पड़ौसी के घर में क्यों है। वह भी तो बन्द होनी चाहिये। यह है द्वेष। पर मेरे घर में बिजली नही, पड़ौसी के घर में है। क्यों न मैं बिजली वाले कर्मी को बुलाकर ठीक करवा लूं। यह है स्पर्धा। मैं कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करुं यह स्पर्धा है । पर मैं प्रथम स्थान पर रहूं या न रहूं, मेरा प्रतिद्वन्दी नही रहना चाहिये, यह द्वेष है। रच्नात्मक एवं क्रियात्मक ढंग से किसी प्रतियोगिता में बैठकर प्रथम रहने के लिये प्रयास करना स्पर्धा है। परन्तु जो व्यक्ति प्रथम आ रहा है उसकी पुस्तक चोरी करके ले जाना कि वह प्रथम स्थान प्राप्त न कर ले यह द्वेष है। मानो एक रेस हो रही है। एक व्यक्ति आगे निकलना चाहता है। वह अपनी कार को चैक करता है कि उसमें कोई कमी तो नही। प्रयत्न करता है कि मैं आगे निकल जाऊं, यह स्पर्धा है। पर जब वह दूसरे की कार को कील लगवाकर पैंचर करवाता है कि वह आगे न निकल जावे, यह द्वेष है। वस्तुतः द्वेष की उत्पत्ति का मूल कारण अविद्या है, जिसकी गणना पांच कलेशों के अन्तर्गत की गई है।

अविद्यास्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः पंच कलेशाः (योगदर्शन)

जब हमसे कोई द्वेष करे हमारा उस व्यक्ति के प्रति क्या व्यवहार हो ? क्या आक्रामक ? नही।

वो जम्भे दध्मः

हम उसे परम् पिता परमात्मा की न्याय व्यवस्था पर छोड़ दें। ईश्वर न्यायकारी है। वह स्वयं उस व्यक्ति को उसक पाप का बदला देगा। उसके पाप की सजा देगा। हम क्यों यह काम करें जो परमात्मा ने करना है। हम तो सदा एक दूसरे के साथ स्नेह से, नम्रता से रहते हुए अपनी इस जीवन यात्रा को सुखमय और आन्नदमय बनाते हुए बढ़ते जायें।

तृतीय अध्याय

मोह

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।

मनसा परिक्रमा का यह पहला मंत्र हैं यह मंत्र पूरा नही लिखा गया। केवल उतना लिखा गया है जितना बाकी मंत्रों से भिन्न है। इस मंत्र का एक–एक शब्द मार्ग दर्शन करता है। सो आओ विचार करें कि मंत्र क्या निर्देश देता है।

प्राचीदिक

प्राची का अर्थ है पूर्व और दिक का अर्थ है दिशा। व्यक्ति पहले पूर्व दिशा की ओर बढ़ता है। पूर्व की दिशा आगे बढ़ने की दिशा है। मनुष्य आगे बढ़ना चाहता है तो कौन उसके रास्ते में रुकावट डालता है ? मोह। मोह मनुष्य को अग्रसर होने से रोकता है। वैसे तो मोह का होना आवश्यक है। मोह नही तो बच्चों का लालन पालन कौन करे ? मोह वश ही माता–पिता बच्चों को पालते हैं, बड़ा करते हैं, उन पर जान देते हैं। माता मोह वश स्वयं गीले बिस्तर पर सोती है। पुत्र को सूखे पर सुलाती है पर यह मोह सीमित चाहिये। वेद ने मोह के लिये जो सीमा र्निधारित की है वह है पचास वर्ष। मनुष्य पचास वर्ष के बाद घर–गृहस्थी छोड़कर वान प्रस्थी हो जाये। स्वामी दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि जब पुत्र के पुत्र पैदा हो जाये तो घर छोड़ देना चाहिये। यदि पत्नी साथ आए तो ठीक है वरना अपनी पत्नी को पुत्र के पास छोड़ कर आ जावे। आज जो दुःख है उनमें से अधिक दुःखों का मूल कारण मोह है। लोग कहते हैं कि हम गृहस्थ छोड़कर वानप्रस्थी तो हो जायें पर क्या करें। पोते–पोतियां अभी छोटे हैं तो उनको कौन पालेगा। यदि तुमने अपने बच्चों को पाला है तो उनको भी अपने बच्चों को स्वयं पालने का अवसर दो। लोग अपने पुत्र तथा पुत्रवधुओं से गालियां खाते हैं पर फिर भी घर नही छोड़ते।

किसी को परिवार, मित्रजन, सगे–सम्बन्धियों से मोह है तो किसी को शरीर से, किसी को बलसत्ता से है तो किसी को सम्पत्ति से। पर मोह कोई भी हो कैसा भी हो बुरा है घातक है। केकई ने मोह वश अपने पुत्र भरत को राजगद्दी

दिलवाई और रामचन्द्र जी को चौदह वर्ष का बनवास। परिणाम क्या हुआ ? दशरथ की मौत। पति भी खो बैठी और पुत्र भरत का प्यार भी खो बैठी। इसी प्रकार दुर्योधन ने राज्य सत्ता का मोह दिखाया और पाण्डवों को पांच गांव देने से भी इन्कार कर दिया। परिणाम क्या हुआ ? एक भीषण युद्ध हुआ। मोह वश व्यक्ति कभी भी न्याय नही कर सकता। धृतराष्ट्र मोह वश यह नही कह सका कि कौरव गलत है और पाण्डव ठीक। परिणाम क्या हुआ ? धृतराष्ट्र के सौ के सौ पुत्र पिता के जीवन काल में ही मारे गये। मंत्र में आगे शब्द हैं –

अग्नि अधिपति

ईश्वर के बहुत से नाम हैं। उसका असली नाम मुख्य नाम ओ३म् है जो कि उसका निजी नाम है। शेष नाम ईश्वर के गुणों पर आधारित हैं। मनसा परिक्रमा के हर मंत्र में प्रभु के उन गुणों पर आधारित नाम को चुना गया है जिन गुणों का स्मरण करके हम उस चक्र से बाहर आ सकें जिस चक्र का जिक्र उस मंत्र में किया गया है। चूंकि इस मंत्र में ''मोह '' का जिक्र चल रहा है, इसलिए ईश्वर के गुणों के आधार पर उसे ''अग्नि'' के नाम से सम्बोधित किया गया है। अग्नि का अर्थ है ज्ञान स्वरुप, बन्धन रहित अर्थात मुक्त। अधिपति का अर्थ है– स्वामी। भावार्थ यह हुआ कि जब व्यक्ति मोह के जंजाल में फंसा हुआ हो तो परमात्मा की शरण में जाये और याद करे कि परमात्मा बन्धन रहित है मुक्त है। मैं क्यों न मोह के बन्धन से मुक्त हो जाऊं। परमात्मा तुम ज्ञान स्वरुप हो मुझे भीं ज्ञान दो। तुम प्रकाश स्वरुप हो मेरे अन्दर भी ऐसा प्रकाश भर दो कि मैं इस जाल से निकल सकूं। फिर मन में एक अभिलाषा पैदा होती है कि ज्ञान स्वरुप से ज्ञान प्राप्त करुं कि मोह को कैसे छोड़ा जाये। वास्तविक्ता क्या है ? स्वाध्याय क्या है ? फिर ज्ञान हुआ कि नित्य को अनित्य समझने से मोह बढ़ता है और नित्य को नित्य जानने से और अनित्य को अनित्य जानने से मोह कम होता है। इस बात को जरा विस्तारपूर्वक सोचा जाये तो बात और भी स्पष्ट रुप में आपके सामने आ जायेगी। एक व्यक्ति का पुत्र युवावस्था में ही किसी दुर्घटना में प्राण त्याग देता है। पिता रो–रो कर पागल सा हो जाता है। चीखता है चिल्लाता है। कभी परमात्मा को कोसता है कभी गाली तक भी देता है। पर ऐसा क्यों ? क्योंकि उसने समझ रखा था कि मेरे पुत्र का शरीर नश्वर नही मेरे पुत्र का शरीर नित्य है, वह तो कभी नही मरेगा। वह यह मानने को तैयार ही नही कि पुत्र ने मरना तो

था ही, आगे क्या और पीछे क्या। उसका यह अज्ञान उसके मोह का कारण बना हुआ है।

एक व्यक्ति का वृद्ध पिता बीमार हो जाता है। पुत्र उसकी बहुत सेवा करते हैं। कभी कोइ छुटट्टी लेकर घर बैठता है तो कभी कोई। एक साल की बीमारी के पश्चात पिता जी शरीर का त्याग कर देते हैं। अब अफसोस तो बहुत है पर उतना नही जितना कि उस पिता को हुआ था जिस का जवान पुत्र मर गया था। क्योंकि इन लोगों ने वास्तविक्ता को पहचान लिया था कि शरीर नश्वर है। इसने जाना तो है ही , आगे क्या और पीछे क्या? जो व्यक्ति अफसोस करने आता है उससे यही कहते हैं कि हमने पिता जी की बहुत सेवा की, बहुत ईलाज करवाया, पर आखिर तो जाना ही था चले गये। हम तो इस बात पर प्रसन्न हैं कि वह हमारा कोई दु:ख देखकर नही गये। यदि उनके जीते जीते कोई दुर्घटना हो जाती तो उन्हें बहुत दु:ख होता। वास्तविकता जानने के पश्चात कि पिता का शरीर नश्वर है, पिता से मोह टूट गया था या कम हो गया था।

अब एक तीसरी अवस्था पर विचार करें। एक पिता का पुत्र कैंसर का मरीज है । डाक्टर कह देते हैं कि अब अधिक से अधिक यह एक साल जीवित रहेगा। कैंसर के फोड़े के कारण वह व्यक्ति हर समय चीखता है चिल्लाता है। पिता से पुत्र का दु:ख देखा नही जाता। वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर या तो इसे ठीक करदे या फिर इसे अपने पास बुला ले। मुझसे इसका दु:ख सहन नही होता। थोड़े ही दिनों में उस पुत्र का प्राणान्त हो जाता है। अब पिता को दु:ख तो है पर उतना नही जितना उस पिता को जिसका पुत्र दुर्घटना में मारा गया था। हांलाकि दोनों घरों में युवा मृत्यु हुई है। जिसका पुत्र कैंसर से बीमार था वह पुत्र के मरणोपरान्त यह नही कहता कि मैं लुट गया। उतनी चिल्लाहट नही। दु:ख तो है पर परिवार नें आने वाले दु:ख के लिये अपने आप को मानसिक रुप से तैय्यार किया हुआ था। क्यों ? क्योंकि वह समझ चुके थे कि शरीर तो नश्वर है। इसने तो जाना ही है, आगे क्या और पीछे क्या। जल्दी चला जाये तो ठीक है। कम से कम यह दु:ख तो न पाये जो यह सहन कर रहा है। इस ज्ञान ने पिता के मन में पुत्र के प्रति मोह को घटा दिया।

अब यह तो ज्ञात हो गया कि नित्य को नित्य और अनित्य को अनित्य जानने से मोह कम होता है। जब अर्जुन ने अपने सामने सगे–सम्बन्धी देखे तो

वह मोह में फंस गया और भगवान श्री कृष्ण ने यही उपदेश दिया कि शरीर नश्वर है और आत्मा नित्य है। यही संक्षिप्त रुप में गीता का सार है। इसी प्रकार जैसे शरीर नश्वर है वैसे राजसी सत्ता, वैसे धन–सम्पत्ति सब नश्वर है। फिर नश्वर चीज से मोह कैसा ? पर केवल ज्ञान से मोह समाप्त नही होता। मनुष्य में कोरा ज्ञान उस प्रकार है जैसे गधे की पीठ पर पुस्तकों का बोझ लदा हो। ज्ञान प्राप्ति तो लक्ष्य तक पहुंचने का पहला स्टेशन है। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात अपने अन्दर संस्कार पैदा करने हैं। कैसे संस्कार ? मंत्र इसका उत्तर अगले शब्दों में देता है –

असित रक्षितः

असित का अर्थ है– बन्धन रहित। रक्षित का अर्थ है– रक्षक। अपने अन्दर बन्धन रहित होने के संस्कार पैदा करने के उपरान्त ही मनुष्य मोह से अपनी रक्षा कर सकता है। बन्धन रहित को अंग्रेजी में Detachment और मोह को Attachment कहते हैं। यदि मोह को छोड़ना होगा तो र्निधारित सीमा के पश्चात यह सब रिश्ते–नाते तोड़ने होंगे। पर यह जल्दी से टूटने वाले नही। जब तक मन में वैराग्य पैदा नही होता। वैराग्य मन में तब पैदा होता है जब मनुष्य को या तो कोई धक्का लगे या फिर किसी व्यक्ति के मुख से निकला कोई शब्द किसी समय मन की अन्दरली तह तक पहुंच कर घर कर जाये।

राजा भर्तृहरि को एक महात्मा ने फल लाकर दिया और कहा कि यह एक अमर फल है। विश्व में ऐसा एक ही फल है। आपके लिये लेकर आया हूं। इसको जो व्यक्ति खाता है अमर हो जाता है। राजा ने वह फल सहर्ष स्वीकार किया। राजा अपनी पत्नी से बहुत प्यार करता था। उसने वह फल अपनी पत्नी को दे दिया। क्योंकि वह नही चाहता था कि वह कभी मरे। इतना मोह था राजा का अपनी पत्नी के साथ। रानी राजा के ड्राईवर से प्यार करती थी। उाने वह फल उस ड्राईवर को दे दिया। ड्राईवर ने वह फल एक वैश्या को दे दिया। वैश्या ने सोचा कि उसका जीना बेकार है। उसकी तो उतनी देर तक कदर व कीमत है जब तक उसके पास यौवण है। तत्पश्चात वह जी कर क्या करेगी ? बुढ़ापे में उस कुल्टा को कौन पूछेगा। उसने सोचा कि क्यों न यह फल राजा को दे दे। क्योंकि राजा न्यायमूर्ति है, उसका अमर रहना ज्यादा जरुरी है। उस वैश्या ने वह फल राजा को दे दिया। इस प्रकार वह फल दोबारा राजा के पास पहुंच गया। राजा

अपने हाथों में दोबारा उसी फल को देखकर आश्चर्य में पड़ गया। छानबीन से सारी बात समझ में आ गई। बहुत धक्का लगा कि जिस पत्नी से वह इतना मोह करता है वह किसी और से प्यार करती है। बस वैराग्य पैदा हो गया और वह राजा भर्तृहरि से महात्मा भर्तृहरि हो गए।

स्वामी दयानन्द ने अपने घर में मृत्यु देखी। एक बहन की दूसरी चाचा की। वैराग्य पैदा हो गया। इसी प्रकार वैराग्य महात्मा बुद्ध को पैदा हुआ था, उसने भी परिवार में मृत्यु का नग्न नाच देखा।

बाल्मीकि एक डाकू था। डाके डाल कर परिवार का पेट भरता था। एक बार एक महात्मा उसका शिकार बना। महात्मा ने पूछा ऐसा क्यों करता है ? बाल्मीकि ने कहा कि परिवार का पेट भरने के लिये। महात्मा ने कहा कि यदि तूं डाके डालता पकड़ा गया तो क्या तेरे परिवार वाले, जिनके लिये तू यह पाप करता है, तुझे दिये जाने वाले दंड के भागी बनेंगे। बाल्मीकि ने कहा क्यों नही। महात्मा ने कहा कि नही तुझे गलतफहमी है। जाकर पूछ कर आ परिवार वालों से। बाल्मीकि ने कहा मैने कच्ची गोलीयां नही खेली। तूं पीछे से भाग जाना चाहता है। महात्मा ने कहा यदि तूं ऐसा सोचता है तो मुझे एक पेड़ से बांध दे और चला जा। बाल्मीकि ने ऐसा ही किया। घर जाकर परिवार वालों से वही प्रश्न पूछा कि यदि मैं पकड़ा गया तो क्या तुम मुझे दिये जाने वाले दंड के भागी बनोगे ? सब ने कहा हम क्यों भागी बनें। पाप तू करता है दंड भी तूं भुगत। तेरी जिम्मेदारी है हमें पालने की। पाप की कमाई खिला या पुण्य की, यह तेरी मर्जी है। तेरे पाप में हम क्यों भागी बनें। बाल्मीकि वापिस आ गया। महात्मा को खोल दिया और उनके पांव पकड़ लिये। परिवार के प्रति मोह समाप्त हो गया और डाकू बाल्मीकि से ऋषि बाल्मीकि बन गए।

इसी प्रकार तुलसी दास की शादी को अभी थोड़े दिन ही हुए थे कि एक शाम वह घर आये। देखा घर पर पत्नी मौजूद न थी। पूछने पर पता चला कि मायके गई है। तुलसी दास उसी समय ससुराल के लिये चल पड़े। रास्ते में एक नदी पड़ती थी। उसको पार करने के लिये कोई नौका भी नही थी। एक लकड़ी का गोला पानी में तैरता हुआ दिखाई दिया। उसको पकड़ कर नदी पार की। फिर ससुराल पहुंचे। दरवाजा बन्द था। दीवार को फांदा और खिड़की के पास पहुंचे। वहां एक रस्सी-सी लटक रही थी। उसको पकड़ कर खिड़की से पत्नी के कमरे

में प्रवेश किया। पत्नी तुलसी दास को इतनी रात गये अपने कमरे में देखकर बड़ी चकित हुई। पुछा कि इतनी देर गये आप किस साधन से यहां पहुंचे। तुलसी दास ने सब बातें सुना दीं। हैरानी हुई जब उसने सुना कि खिड़की के पास एक रस्सी लटक रही थी तो चिंतित हुई कि कहीं इस रास्ते से चोर न आ जाये। जाकर देखा तो वह रस्सी नही थी एक मृतक सांप लटक रहा था। अब और असमंजस में पड़ गई। सोचा कि नदी पर जरुर वह लकड़ी के उस गोले को भी देखा जाये जिसके सहारे तुलसीदास ने नदी पार की थी। जब वहां पहुंचे तो देखा कि जिस चीज को तुलसी दास लकड़ी का गोला समझ रहे थे वह एक शव था। तुलसी दास की पत्नी के मुंह से यह शब्द निकले कि जितना प्यार तूं मुझसे करता है यदि इतना प्यार परमात्मा से करे तो तूं क्या से क्या हो जाये। यह बात तुलसी दास के मन में घर कर गई और तुलसी दास मोह त्याग कर संत तुलसी दास हो गये। इस लिये मोह को त्यागने का साधन सत्संग है जहां से मनुष्य को न जाने किसी का कहा कोई शब्द जीवन के किसी अच्छे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दे।

अब विचारणीय बात यह है कि मोह को छोड़ने के लिये यह तो ज्ञान हो गया कि नश्वर को नश्वर समझने से मोह कम हो जाता है। फिर ज्ञान यह भी हुआ कि ऐसा करने के लिये मनुष्य को बन्धन रहित होना पड़ेगा। संकल्प पैदा करना पड़ेगा कि मनुष्य मुक्त स्वभाव वाला बने। पर वह कैसे बने ? मंत्र फिर उत्तर देता है :–

आदित्या इषवः

आदित्य का अर्थ है– पहुंचे हुए लोग और इषवः का अर्थ है– सहारा। ऐसे व्यक्तियों का सहारा लेना जिनका जीवन ज्ञानमय हो, जो ईश्वर के अखण्ड नियम पर विश्वास करते हों,जिनका जीवन दूसरों के लिये पथ–प्रदर्शक हो। ऐसे व्यक्तियों के जीवन का अनुसरण करके मनुष्य की सोच बदल सकती है। चलो कुछ उच्च आत्माओं के जीवन–चरित्र से कुछ प्राप्त करने का प्रयास करें।

भक्त सिंह ने शरीर के मोह का त्याग किया और फांसी के फंदे पर झूल गये। मरते समय उनके चेहरे पर मस्ती थी। ''मेरा रंग दे बसन्ती चोला '' गाते–गाते फांसी का फन्दा गले में डाल लिया। शरीर के मोह का त्याग किया।

कौन भूल सकता है भक्त सिंह को। श्री लाल बहादुर शास्त्री रेल मन्त्री थे। उन दिनों एक रेल दुर्घटना हुई जिसमें बहुत से लोग मारे गये। शास्त्री जी ने नैतिक रुप में उस दुर्घटना की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। झट मन्त्री परिषद से त्याग पत्र दे दिया। कुर्सी से मोह नही किया। आज जिस मान–सम्मान से शास्त्री जी का नाम स्मरण किया जाता है शायद ही किसी और का नाम उतने मान और सम्मान से लिया जाता हो।

पंडित लेख राम जी के जीवन की यह घटना जब याद आ जाती है तो उनके प्रति श्रद्धा और सम्मान से मस्तक झुक जाता है। मुसलमान धड़ाधड़ हिन्दुओं को ईसलाम धर्म अपनाने के लिये मजबूर कर रहे थे और ओछे हथियारों का प्रयोग कर रहे थे। पंडित लेखराम जी ने शुद्धि आन्दोलन चलाया हुआ था। वे उन्हे वापिस हिन्दु धर्म में ला रहे थे। अचानक उन्हें घर से पुत्र की मृत्यु का तार मिला। पर वह पुत्र की मृत्यु पर भी घर नही आये। मोह उनके रास्ते में खड़ा ही नही हुआ। उनके शब्द थे कि एक पुत्र गया पर बहुत से बचा लिये।

महात्मा बुद्ध घर के मोह को त्याग कर, पत्नी और पुत्र को छोड़ कर, राज्य को छोड़ कर जंगलों में चले गये। न परिवार का मोह न राज्य का मोह। त्याग के पश्चात महात्मा बन गये। महात्मा बनने के पश्चात एक बार फिर वापिस अपने शहर में प्रवचन करने के लिये आये। प्रवचन तो कर रहे थे पर उनकी आँखें जन–समूह में अपनी पत्नी को ढूंढ रही थी कि क्या वह भी प्रवचन सुनने आई है या नही। एक बार थोड़े समय के लिये फिर मोह जागा और पत्नी से मिलने की इच्छा हुई। पत्नी से मिले। पत्नी ने यह गिला नही किया कि क्यों गये। उसका गिला था कि तुम चोरी–चोरी क्यों गये। वह बोली कि मैं क्षत्रिय धर्म से सम्बन्धित हूं और परम्परा अनुसार क्षत्रानियां स्वयं तिलक लगाकर, पूजा करके पति को रणभूमि के लिये भेजती हैं। मैं स्वयं तुम्हें इस काम के लिये भेज देती। पत्नी के इन शब्दों को सुन कर जागा मोह दोबारा दब गया और महात्मा बुद्ध मोह त्याग के पश्चात अमर हो गये।

स्वामी शंकराचार्य जी मोह को त्याग कर भगवान बने। घर छोड़ कर जाना चाहते थे पर मां जाने नही देती थी। अचानक एक युक्ति उनके मन में सूझी। मां को साथ लेकर नदी के किनारे चले गये। मां को तट पर बिठा कर स्वयं स्नानार्थ नदी में प्रवेश किया। झूठ–मूठ का शोर मचाना शुरु कर दिया कि मगरमच्छ ने

मेरा पैर पकड़ लिया है। मां घबराई शोर मचाना चाहती थी कि शंकराचार्य ने कहा कि मां तूं चिन्ता न कर। यह कह रहा है कि यदि तूं घर छोड़कर जंगलों में चला जाये तो वह मुझे छोड़ देगा। मां बेचारी बातों में आ गई और मान गई। बोली बेटा, तूं चला जा। इस प्रकार मरने से तो अच्छा है तूं चला जा। कम से कम जीवित तो रहेगा। फिर शंकराचार्य जी बाहर आ गये। घर का मोह त्याग कर माता जी की आज्ञा से घर छोड़ निकल गये सच्चे मालिक की तलाश में। मां ने एक वचन लिया कि बेटा मेरे मरने पर मेरे मृतक शरीर को अग्नि देने अवश्य आ जाना और इस प्रकार मोह त्याग के पश्चात शंकराचार्य जी भगवान शंकराचार्य हो गये।

स्वामी दयानन्द का जीवन तो मोह के त्याग की एक पूरी कहानी है। पहले माता पिता, प्रियजनों का मोह त्याग कर घर से चले गये और मरने तक टंकरा (उनका निवास स्थान) की ओर मुंह भी नही किया। प्राचार्थ भी नही। सम्पत्ति या धन का मोह भी नही था। राजा ने बुलवा कर स्वामी जी को कहा कि जितना चाहो धन ले लो। वेद प्रचार करो सब कुछ करो पर मूर्ति पूजा का विरोध न करो। स्वामी जी ने इन्कार कर दिया। राजा ने कहा सोच लो ऐसा दानी कही नही मिलेगा। स्वामी जी का क्या सुन्दर उत्तर था कि राजा ऐसा दानी नही मिलेगा तो मेरे जैसा त्यागी भी कहीं नही मिलेगा जो इतनी सम्पत्ति को ठुकरा दे। स्वामी दयानन्द को एक नही अनेकों पेशकश हुई कि हमारे मठ के तुम स्वामी बन जाओ। पर उन्होने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया क्योंकि उन्हे राजसी सत्ता का मोह नही था। उनके सेवक ने ही उन्हें खाने में जहर दे दिया। पता लग गया। उसको पैसे देकर भगा दिया कि पुलिस तुझे तंग करेगी। डाक्टरों को कदापि यह नही कहा कि मुझे बचा लो या मेरे काम अभी अधूरे पड़े हैं, अभी आर्य समाज का जो पौधा लगाया है उसे चमकाना है, वेद का प्रचार घर–घर पहुंचाना है इत्यादि। हंसते–हंसते प्राण त्याग दिये इन शब्दों के साथ कि प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो। शरीर तेरा दिया हुआ है। जब चाहे वापिस ले लो। शरीर के साथ कभी मोह नही दिखाया। जब–जब मनुष्य ने मोह त्यागा, ऊंचा उठता गया और जब–जब मोह में फंसा, धंसता चला गया। इस चक्र से निकलने में ही कल्याण है।

चतुर्थ अध्याय

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रो ऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः।

मनसा परिक्रमा का यह दूसरा मंत्र है। यह भी पूरा नही लिखा गया और उतना ही लिखा गया है। जितना बाकी मंत्रों से भिन्न है। अब जरा इस मंत्र का विश्लेषण करें।

दक्षिणा दिक्

दक्षिणा दिक् का अर्थ दक्षिण दिशा भी है और दक्षिणा का अर्थ दक्षिणा अर्थात यज्ञ, दान और त्याग भी है। जब मनुष्य परोपकार की ओर बढ़ता है तब लोभ उसके रास्ते में खड़ा हो जाता है। धन का कमाना और लोभ एक बात नही। धन का कमाना तो अति आवश्यक है। बिना धन के गृहस्थ कैसे चले। मोह को गृहस्थ के बाद त्याग देना चाहिये। धन केवल वर्तमान के लिये ही नही धन तो भविष्य के लिये भी चाहिये और धन बचाने की बात पर सरकार तो क्या सभी बल देते हैं। धन यदि न जोड़ा जाये तो गृहस्थ त्याग के बाद वानप्रस्थी कैसे जीवन का निर्वाह करे। धन तो आने वाली किसी आपात कालीन अवस्था के लिये भी आवश्यक है। फिर लोभ क्या है ? धन कमाने के मोह का पागल पन की सीमा तक आ जाने का नाम लोभ है। लोभी व्यक्ति पहले इसलिये धन का उपार्जन करता है कि उसके वर्तमान की सब आवश्यकताओं को पूरा करना है। फिर कहता है कि भविष्य में पैदा होने वाली किसी आपत्ति के लिये कमा रहा है। जब यह लक्ष्य भी पूरा हो जाता है फिर वह कहता है कि मैं जब मरुं तो बच्चे भूखों न मरें। फिर यह बहाना लगाता है जब धन अधिक से अधिक मात्रा में उपार्जित कर लेता है तो कहता है कि पैसा एक नशा है। कोई भी नशई नशा नही छोड़ सकता। वह कैसे यह नशा छोड़ दे। शायद वह सोचता हो कि वह धन मरते समय साथ ले जायेगा।

एक बार एक व्यक्ति के मरने का समय आया तो उसने अपने चार मित्रों को बुलाया। एक था हिन्दू, एक मुसलमान, एक सिक्ख तथा एक ईसाई। उसनें चारों को एक–एक लाख रूपये दे दिए और कहा कि जब मैं मर जाऊं तो यह

रूपये मेरी कब्र में डाल देना। लोग तो यह कहते हैं कि जब कोई मरता है तो साथ कुछ नही ले जाता। मैं संसार को सिद्ध कर दूंगा कि मैं धन साथ लेकर मर रहा हूं और साथ ले जा रहा हूं। थोड़े दिनों के पश्चात वह मर गया। चारों मित्रों ने उसका दिया रूपैया उसकी इच्छानुसार उसकी कब्र में डाल दिया। थोड़े दिनों के बाद चारों मित्र इकटठ्े बैठे और अपने मृतक मित्र को याद करने लग गये। एक ने कहा कि हमारा मित्र पागल था, यों ही उसने चार लाख रूपैया मिटट्ी कर दिया। उसके नाम पर उसकी स्मृति में हम कोई चिकित्सालय बनवा देते, धर्म स्थान बनवा देते, स्कूल चला देते कितना अच्छा होता। इस पर हिन्दू बोल उठा कि भाईयो एक बात कहता हूं जो गुप्त रखनी चाहिए। हम तक ही सीमित रहे। मैने उसकी कब्र में एक लाख नही डाला केवल अस्सी हजार डाला है बाकी बीस हजार मैने उसके नाम पर दान दे दिये हैं एक मन्दिर के लिये और यह रही उसकी रसीद और दान मैने अपने नाम पर नही दिया उस मृतक मित्र के नाम पर दिया है। अब सिक्ख मित्र भी बोल उठा। बोला कि भाइयो अब बात खुल ही रही है तो मैं भी अपनी सुना दूं। मैने भी सत्तर हजार डाला है। बाकी तीस हजार गुरुद्वारे को दान दिया है। दान भी उसी के नाम से है और यह रही उसकी रसीद। अब तीसरा ईसाई मित्र भी बोल उठा कि भाइयो यदि ऐसी बात है तो मेरी भी सुन लो। मैने भी साठ हजार डाला है बाकी चालीस हजार गिरजा घर को दान दे दिया है और यह रही उसकी रसीद। अब मुसलमान मित्र की बारी आई। वह बाकी तीनों मित्रों को ताड़ना करने लग गया कि तुम कौन होते हो मित्र के आदेश के प्रतिकूल चलने वाले। उसका पैसा था जैसी उसकी इच्छा थी उसके अनुसार आपको करना चाहिये था। ठीक है आपने कुछ राशि दान में ही दी और दी भी उसके नाम पर। परन्तु आपने उसकी इच्छा की अवहेलना तो की है। अब अन्य तीनों मित्रों ने पूछा कि भाई तुमने क्या किया ? और कैसे किया ? मुसलिम ने कहा कि मैने उसका लाख का लाख बैंक में अपने खाते में जमा करा दिया और अपनी चैक बुक से उसके नाम का एक लाख रूपये का चैक काट कर उसकी कब्र में डाल दिया है। जब वह ऊपर जायेगा अपने रूपये साथ ले जायेगा। मेरा चैक ले जायेगा और कैश करवा लेगा।

बस यही हाल है। बाद में लोग ही खा जाते है। सिकन्दर ने मृत्यु से पहले यह इच्छा प्रकट की थी कि जब उसका मृतक शरीर कब्र में डालने के लिये ले

जाया जाये तो उसके दोनों हाथ कफन से बाहर रखें जायें ताकि संसार को पता चल सके और लोग सबक सीख सकें कि विश्व विज्यी भी खाली हाथ जा रहा है। साथ कुछ भी नही ले जा रहा।

लोभी व्यक्ति का पहला लक्षण है कि वह कंजूस बन जाता है। जहां आवश्यक हो वहां भी खर्च नही करता। दूसरा लक्षण यह हो जाता है कि उसकी दान करने की वृति समाप्त हो जाती है और कोरापन आ जाता है और वह कटु वचन बोलता है।

एक बार एक व्यक्ति भोला–भाला गांव का रहने वाला मुम्बई पहुंच गया। समुंद्र तट पर घूम रहा था कि अचानक उसे प्यास लगी। सोचा समुद्र से चुल्लु भर पानी पी लूं। पानी लिया पर खारा लगा। मुंह का स्वाद खराब हो गया। पास से एक महात्मा गुजर रहे थे। उस व्यक्ति ने पूछा कि महात्मा जी पानी इतना कड़वा क्यों है ? हमारे गांव में छोटे–छोटे नदी–नाले, झरने होते हैं, उनका पानी हमेशा मीठा होता है। महात्मा ने उत्तर दिया कि नदी नाले सबको पानी देते हैं खेतों को, फसलों को, जलघरों को, फैक्ट्रीयों को। चाहे उनके पास अपने आप में थोड़ी मात्रा में ही जल है फिर भी मीठे हैं। समुंद्र केवल पानी लेता ही है। नदियों से नालों से इत्यादि। देता किसी को नही। हालांकि समुंद्र में जल की मात्रा असीमित है। जो देता नही वह खारा है और जो देता हे वह मीठा है। व्यक्ति चाहे निर्धन हो चाहे धनाढ्य, जो दान देगा वह नम्र होगा, मृदुभाषी होगा। और वह जो दान नही देता वह खारा होगा। उसका धन न उसके काम आता है न समाज के न राष्ट्र के।

मनुष्य लोभ इसलिये करता है कि उसे सुख की प्राप्ति हो। सदा प्रसन्न रहे। पर धन–दौलत कभी सुख नही दे सकते। सुख इन्द्रियों का विषय है और प्रसन्नता मन का और आनन्द आत्मा का विषय है। शीत काल में कमरे में हीटर चलता है पर मन फिर भी अशान्त है। एक बार एक राजा ने जिसके पास हर ऐश्वर्य का साधन था एक महात्मा से पूछा कि मेरे पास सब कुछ है पर मन में प्रसन्नता नही। महात्मा ने कहा राजन कि किसी ऐसे व्यक्ति की जो हर समय प्रसन्न रहता हो यदि आप उसकी कमीज पहन लें तो आप सदा प्रसन्न रह सकते हैं। राजा ने सब स्थानों पर अपने दूत एवं गुप्तचर भेजे कि तलाश की जाये कि कौन व्यक्ति सदा प्रसन्न रहता है और आखिर एक व्यक्ति मिल ही गया। उन्होने कहा कि भाई बादशाह ने तेरी कतीज मांगी है क्योंकि वह भी तेरी कमीज पहन

कर प्रसन्न रहना चाहता है। उस व्यक्ति ने कहा कि मैं तो निर्धन हूं। कमीज मेरे पास है ही नही। खाली लंगोटी पहनता हूं, पर प्रसन्न रहता हूं। प्रसन्नता का, धन–ऐश्वर्य या वैभव से कोई सम्बन्ध नही।

इसके पश्चात मंत्र में शब्द हैं :

इन्द्र अधिपति

इन्द्र भी परमात्मा का गौणिक नाम है अर्थात परमात्मा ऐश्वर्यो का स्वामी है। ऐश्वर्य देने वाला परमात्मा ही है। मनुष्य ऐश्वर्य मांगे तो केवल परमात्मा से। वह देता है पर मांगने वाला चाहिये, परन्तु देता कर्मानुसार ही है। बिना कर्म के यदि हम कुछ प्राप्त कर भी लें तो वह निकल जायेगा। चोरी से, डाके से या बीमारी से। उस परमात्मा के इस संसार को देखो। वह हर वस्तु का स्वामी है जल का, सूर्य का, आकाश का, पृथ्वी का, अंतरिक्ष का, हर खनिज–पदार्थ का, हर फल का, हर फूल का। लोभ करके कहां तक जोड़ोगे। उसका मुकाबला तो फिर भी नही कर सकते। यदि पीछे ही रहना है तो फिर उसकी दया दृष्टि मांगो। बाकी वह स्वयं अपने आप देगा।

तिरश्चि राजी रक्षिता

''तिरश्चि '' अर्थत टेढ़ी गति करने अर्थात अधर्म ''राजी '' अर्थात प्रकाश ''रक्षित '' अर्थात हमारा रक्षक होवे। हम में ऐसा प्रकाश उत्पन्न होवे कि हम धन उत्पत्ति के लिए कभी टेढ़ी चाल न चलें और अधर्म से धन न कमावें। आज कल कुछ वकील, न्यायाधीशों, पुलिस अफसरों, सरकारी वकीलों, सरकारी डाक्टरों के नाम पर पैसे खाते हैं। इसी प्रकार कुछ डाक्टर बिना जरुरत के एक्स–रे, ई. सी.जी., कैट स्कैन, खून, पिशाब, टट्टी के टैस्ट और न जाने क्या–क्या केवल ध ान कमाने के लिये लिख देते हैं। कई दुकानदार कम तोलते हैं। चीज दिखाते कुछ हैं देते कुछ हैं। कुछ लोग मृतक व्यक्ति के पैसे मार लेते हैं या तो कहते हैं कि हमने लिये ही नही या कहते हैं कि हमने मृतक के जीवन काल में ही लौटा दिये थे। घूस खोरी करते हैं, चोरी–डाके से धन इकटठ्ा करते हैं, तस्करी करते हैं, सीमेंट कम लगाते हैं और दिखाते ज्यादा हैं।

पिछले दिनों डी.ए.वी. स्कूल डबवाली (हरियाणा) में वार्षिकोत्सव हो रहा था। अचानक पंडाल में आग लग गई। दस मिन्ट के अन्दर–अन्दर करीब एक

हजार बच्चे, युवक एवं वृद्ध आग की लपेट में आकर भस्म हो गये। शायद यह राष्ट्र की क्या बल्कि विश्व की सबसे भयानक घटना थी पर लोभी दरिन्दों ने अपने मित्रों सम्बन्धियों के शव पहचानने की नियत से स्त्रियों के शवों से आभूषण उतारे और चम्पत हो गये। यह सब टेढ़ी चालें ही तो हैं।

एक बार स्वर्ग और नरक में बीच वाली दीवार टूट गई। स्वर्ग वाले नरक वालों पर जोर देते हैं कि तुम बनाओ और नरक वाले स्वर्ग वालों पर जोर देते हैं कि तुम बनाओ। कोई समझोता नहीं हो सका। स्वर्ग वालों ने धमकी दी कि हम परमात्मा की अदालत में तुम पर मुकद्दमा कर देंगे। इस पर नरक वाले बोले कि तुम जीतोगे कैसे सारे वकील तो नरक में हैं। कहने का भाव यह है कि मनुष्य अन्त नही सोचता कि अधर्म की कमाई कभी फल नही लाती और मनुष्य इसी धुन में रहता है कि वह पैसा इकटठ्ा करता जाये और करता जाये। एक गांव में आग लग गई। बुझने न पा रही थी। सब यन्त्र फेल हो गये। एक महात्मा ने कहा कि यदि कोई पतिव्रता स्त्री प्रभु के चरणों में बैठ कर इस आग की बुझने की प्रार्थना करे तो आग बुझ सकती है। एक वैश्या सामने आई और उसने कहा कि मैं प्रार्थना करती हूं। सभी हैरान हो गये कि तूं कैसी पतिव्रता है। वह बोली कि मैं पूरी पतिव्रता हूं। मैने केवल पैसे को हीं अपना पति माना है किसी और को नही। ठीक यही हाल आज के युग में हो रहा है। लोगों के लिये पैसा ही मां–बाप है, पैसा ही पुत्र है, पैसा ही सब कुछ है और कोई रिश्ता–नाता नही। दुर्योधन ने सत्ता हथियाने के लिये क्या–क्या टेढ़ी चालें नहीं चलीं। कभी जुआ खिलवाया तो कभी झूठा महल बनवाया। आजकल राजनीतिज्ञ भी सत्ता हथियाने के लिये क्या कुछ नही करते। वोटर सूचि में फर्जी नाम लिखे जाते हैं। असली नाम कटवाये जाते हैं। बूथ पर बन्दूक के जोर से वोटें प्राप्त की जाती हैं। यह इसलिये किया जाता है ताकि सत्ता के माध्यम से धन इक्टठ्ा किया जावे। आजकल भारत में हवाला काण्ड चल रहा है। यह इस बात का प्रतीक है कि सब कुछ लोभ के लिये है देश सेवा के लिये कुछ भी नही। अभियुक्त कहते हैं कि हमें झूठा फंसाया गया है ताकि हम प्रधानमन्त्री के विरुद्ध न बोल सकें। प्रधानमन्त्री कहते हैं कि कार्यवाही कानून के अनुसार हो रही है। यदि उन्हें झूठा फंसाया गया है तो प्रधानतन्त्री राजसत्ता के प्रलोभन में आकर यह पाप कर रहा है और यदि वे सच्चे फंसे हैं तो उन्होने यह पाप किया है। तो यह है सब लोभ का परिणाम। मनुष्य जब ऐसी चाल चलता है

तो उसमें पशुभाव जागता है। तब ही ऐसा घिनोना काम करता है। उसका हाल एक गिद्ध के समान हो जाता है जो शवों को नोचता है। उसका हाल उल्लू के समान हो जाता है जो केवल रातों को देखता है क्योंकि रात्रि हर अनुचित कार्य करने का उचित समय होता है।

पित्तर इषवः

लोभ से कौन हमारी रक्षा कर सकता है ? हमारे पित्तर। पित्तर कौन होते हैं ? वह पूर्वज जो ज्ञान स्वरुप हैं जो प्रकाशमय हैं।

ओं यां मेघां देवगणाः पित्तरश्चोपासते।

इस मन्त्र में भी पित्तर शब्द का प्रयोग किया गया है कि हे प्रभु मुझे वह बुद्धि दो जो आपने देवताओं को दी है। मैं उसकी उपासना करता हूं जिसकी पित्तर उपासना करते थे। यहां भी पित्तर शब्द उसी सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। पित्तर शब्द को केवल पूर्वज समझना भ्रान्ति है। यदि पिता को केवल पूर्वज समझा जाये तो मनुष्य धोखा भी खा सकता है।

एक बार एक व्यक्ति ने व्यापार करने का निर्णय लिया। वह अपने पिता के पास गया और बोला कि पिता जी मुझे काम की बातें बतायें कि मैं कैसे व्यापार में सफल होऊं। पिता ने कहा कि छत्त पर चले जाओ और नीचे की ओर देखो। पुत्र छत्त पर चला गया और पिता नीचे ठहर गया। फिर पिता ने कहा कि नीचे छंलांग लगाओ। पुत्र डरने लगा। पिता ने कहा पुत्र डरता क्यों है मैं तेरा पिता हूं। तेरी कोई हानि नही होगी। पुत्र ने कहा पिता जी मुझे चोट लग जायेगी। पिता ने कहा बेटा फिक्र न कर मैं तुझे पकड़ लूंगा। पुत्र ने छलांग लगा दी और पिता ने उसको नही पकड़ा। पुत्र की हडड़ी पसली टूट गई। उसने पिता जी से पूछा कि पिता जी आपने यह क्या किया ? मुझे क्यों नही पकड़ा ? पिता ने कहा बेटा बस व्यापार का यही पहला सबक सिखाना चाहता था कि व्यापार में अपने पिता पर भी विश्वास न करो और यदि करोगे तो धोखा ही खाओगे।

पित्तर ऐसा भी नही होना चाहिए जो स्वयं लोभ में फंसा हो। एक बार संत कबीर के पास राजा नरेश आये तो उन्होने पूछा कि संत जी हम नित्यप्रति दिन संध्या हवन आदि करते हैं पर मन में शान्ति नही और मन बेचैन रहता है। संत ने कहा कोई बात नही मैं कल दरबार में आकर आपको कारण से अवगत

कराऊंगा।अगले दिन संत जी दरबार में पधारे। राजा ने भव्य स्वागत किया और उन्हें उच्च स्थान पर बिठाया। जल पान के पश्चात अपनी शंका का समाधान पूछा। राजा को संत ने कहा कि यदि तुम समाधान वास्तव में जानना चाहते हो तो मुझे एक घंटे के लिये राजा बना दो और सभी को अवगत करा दो कि वह मेरा आदेश मानें। ऐसा ही हुआ। संत ने पहला आदेश जारी किया कि राजा को बन्दी बना लिया जाये और उसे एक खम्भे के साथ बांध दिया जाये। दूसरा आदेश संत ने यह दिया कि उस पुरोहित को जो हवन यज्ञ करवाता है उसे बन्दी बना लिया जाये और उसे दूसरे खम्भे से बांध दिया जाये। ऐसा ही हुआ। अब संत ने राजा से कहा कि पुरोहित से कहो तुम्हे बन्धन से मुक्त कराये। राजा बोला संत जी पुरोहित तो स्वयं बंधा पड़ा है। मुझे कैसे मुक्त करा सकता है। संत ने कहा राजा बस यही तुम्हारी समस्या का समाधान है। जो व्यक्ति खुद बंधा पड़ा है तुम्हें कैसे मुक्त करा सकता है। इसलिये पित्तर ऐसा होना चाहिये जो कि स्वयं लोभ बन्धन से मुक्त हो। जो स्वयं लोभी है वह ओरों को लोभ से बचने की क्या शिक्षा देगा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम मुन्शी राम था। व्यवसाय से एक वकील थे। एक बार एक व्यक्ति उनके पास अपना केस लेकर आया। उन्होने देखा कि केस झूठा है लेने से इन्कार कर दिया। पर उनके मुन्शियों ने वकील साहब की अनुमति के बिना फीस ले ली। मुकद्दमें की तारीख वाले दिन जब वह व्यक्ति हिसाब किताब लेकर कोर्ट में आया तो मुन्शी राम जी हैरान हुये कि मैने तो इस व्यक्ति का केस लेने से इन्कार कर दिया था यह कैसे आ गया। जब पता लगा कि मुन्शियों ने केस ले लिया तो मुन्शी राम जी ने उनकी फीस वापिस करके अदालत को वास्तविक्ता से अवगत करा दिया और कहा कि वह उसका केस नही लड़ना चाहते और यदि वह चाहे तो किसी अन्य वकील की सेवा प्राप्त कर ले।

स्वामी दयानन्द जी का जीवन आरम्भ से लेकर अन्त तक मार्गदर्शन करता है कि मनुष्य को लोभ का त्याग कर देना चाहिये। क्या–क्या लोभ स्वामी जी को नही दिये गये। धन का, गुरुडम का, राजगद्दी का, पर स्वामी जी ने सब पर लात मारी और अपना जीवन केवल ईश्वर भक्ति और परोपकार तक सीमित रखा।

पंचम अध्याय

ओ३म् प्रतीचि दिगवरुणोऽधिपतिः पृदाकु रक्षितान्नमिषवः।

यह मनसा परिक्रमा का तीसरा मंत्र है और यह भी उतना ही लिखा गया है जितना कि यह अन्य मंत्रों से भिन्न है। अब मनुष्य इस मंत्र के माध्यम से प्रतीचि दिशा का परिक्रमा करता है।

प्रतीची दिक

प्रतीची का अर्थ है पीछे की या पश्चिम की और दिक का अर्थ है दिशा। अर्थात पीछे की दिशा या यूं कहें पश्चिम की दिशा। शरीर के पिछले भाग में (पश्चिम की ओर) वीर्य का भाग है अर्थात कामजन्य कार्य का भाग है पीछे रीढ़ की ओर।

मनुष्य को पीछे से आकर काम पकड़ लेता है और पकड़ने के बाद उसे ऐसा जकड़ता है कि वह किसी भी क्षेत्र में अग्रसर नही हो सकता। जहां तक काम का प्रश्न है यह क्रिया अति आवश्यक है क्योंकि यदि ऐसा न हो तो सृष्टि की उत्पत्ति ही समाप्त हो जाये। यदि हर प्राणी काम से ऊपर उठ जाये और ऐसा निश्चय सभी एक साथ कर लें तो सृष्टि में कोई प्राणी या जीव दिखाई ही न दे। सृष्टि उत्पत्ति के लिये ही केवल नही अपितु वंश चलाने के लिये पुत्रोत्पत्ति पर बहुत से शास्त्रों में बल दिया गया है। इसीलिये बहुत से लोग जिनके सन्तान न हो या जिनके केवल लड़कियों ने जन्म लिया हो और किसी पुत्र ने जन्म न लिया हो वह किसी बालक को पुत्र के रुप में गोद लेते हैं। दाह संस्कार प्रायः पुत्र ही करते हैं। कुछ लोग इसलिये पुत्र को गोद लेते हैं ताकि उनकी अन्तयेष्टि मर्यादानुसार की जा सके।

यदि पति या पत्नी सन्तान पैदा करने के अयोग्य हो अथवा पति या पत्नी का किसी लम्बी अवधि का अभाव हो तो सन्तोत्पत्ति के लिये किसी अन्य पुरुष या स्त्री के साथ नियोग अवस्था में भी सन्तानोत्पत्ति के विधान को शास्त्रों ने
धर्मानुकूल माना है।

पर हर क्रिया की एक सीमा होती है। जैसे मोह गृहस्थ आश्रम तक रखना मान्य है और इसके पश्चात मोह रखना वर्जित है उसी प्रकार काम की न केवल सीमा है काम की मर्यादा भी है। काम की सीमा गृहस्थ आश्रम तक ही है और काम

का प्रयोग केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये होना चाहिये वासना रुप मे नही। इसलिये मनुष्य को काम के विषय में पशुओं से भी नीचे की श्रेणी में रखा जाता है। एक कोक पक्षी को छोड़कर सभी पक्षी संयमी हैं और काम को केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये प्रयोग में लाते हैं, परन्तु मनुष्य इस वासनामय भावना से हर मर्यादा का उल्लंघन करता हुआ नीचता की ओर अपने आप को धकेल देता है। वैसे तो हर कार्य यदि मर्यादा के अनुसार किया जाये तो अच्छा लगता है। श्री राम इसी कारण ही पूज्य हुए क्योंकि मर्यादा पुरुषोत्तम थे। परन्तु काम में तो मर्यादा का ऐसा अनिवार्य स्थान है कि जब जब मर्यादा का उल्लंघन हुआ व्यक्ति का स्वरुप कुरुप हो गया। छवि पर अमिट कालिख पोती जाती है और मान सम्मान को ऐसी घात लगती है कि मनुष्य शर्म से मुंह छिपाता फिरता है।

काम की वृति का पैदा होना स्वाभाविक है। प्रकृति ही सिखाती है। परन्तु काम वासना की उत्पत्ति, विषय भोगों में हर समय गिरे रहना, केवल काम विषयों में रुचि रखना इत्यादि भावनायें क्यों पैदा होती हैं ? इन बातों पर विचार करना अति आवश्यक है ताकि मनुष्य के उन्नति के मार्ग में इस बाधक विषय का उपाय सोचा जा सके।

1 **कुसंस्कार** :– इस वासना की उत्पत्ति का सर्वप्रथम कारण है कुसंस्कार। जिन व्यक्तियों के माता पिता इस वासना के शिकार हैं उनके बच्चों पर यह प्रभाव संस्कारों द्वारा अपने आप चले जाते हैं और जब माता पिता को बच्चे इस घिनौनी वासना में सलंगन देखते हैं तो यह संस्कार अपने आप पनपते हैं। इसलिये माता पिता के लिये आवश्यक है कि वह अपनी सन्तान के उज्जवल भविष्य के लिये उनके चरित्र का निर्माण करने के लिये अपने आप को संयमी रखें और जितेन्द्रिय रहें ताकि उनकी सन्तान को कोई कुसंस्कार न मिल सके।

2 **कुसंग** :– कई बार ऐसा भी देखने में आया है कि एक व्यक्ति एक ऐसे वातावरण में पलता है जहां सब के सब व्यक्ति सयमी हैं। अच्छे संस्कारों को लेकर पैदा होता है, परन्तु फिर भी वह इस वासना का शिकार होता है। इसका कारण है कुसंग। व्यक्ति का साथ, सम्बन्ध, मित्रता ऐसे व्यक्तियों से हो जाती है जो कि इस वासना में सदा आसक्त रहते हैं। माता पिता को चाहिये कि बच्चों का ध्यान रखें कि उनकी संगति किस प्रकार के बच्चों से है। उनके मित्रों के परिवार के सदस्यों के क्या संस्कार हैं और कैसा उनका चरित्र है इत्यादि। वास्तव में कुसंग से बचाने के लिये के लिये बच्चों को यह उपदेश देना चाहिये कि वे उस समय जब उन्हें करने को कोई कार्य नही होता अपने पित्तरों के संग बैठा करें क्योंकि व्यक्ति अपने से बड़ों के पास बैठ कर कभी भी मर्यादा से

बाहर बात नही करता।

3.कुकर्म :– वासना उत्पति का तीसरा स्रोत है कुकर्म। मनुष्य जब शराब पीता है, जुआ खेलता है, चोरी करता है, डाका डालता है या किसी और किसी और अवैध ढंग से पैसा कमाता है उस समय इस भावना का पैदा होना स्वाभाविक हो जाता है। इसलिए मनुष्य को हमेंशा सुकर्म करते रहना चाहिए। कुकर्मी अश्लील बातें करते हैं। गाली के सिवाये उनकी जिव्हा द्वारा और कोई शब्द नही निकलता।

4.दूषित वातावरण :– एक समय था जब बच्चों को गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती थी। वह्म उनको वेद आदि अध्ययन करवाये जाते थे, फिर गुरुकुलों का स्थान स्कूलों ने ले लिया। वहां भी धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। किसी स्कूल में रामायण, किसी में गीता, किसी में गुरु ग्रन्थ साहिब इत्यादि। फिर समय आया कि यह सब कुछ बन्द कर दिया गया और अब बच्चों के हाथ में गन्दे नावल, अश्लील कहानीयों की पुस्तकें होती हैं। पहले छात्रावासों में धार्मिक नेताओं के चित्र लगे होते थे या देश पर मर मिटने वालों के चित्र भवन की शोभा को चार चांद लगाते थे। आज फिल्मी कलाकारों की नंगी तस्वीरें लगी होती हैं। पहले–पहले जो चलचित्र आते थे उनके पीछे ध्येय होता था मानो चरित्र निर्माण, राष्ट्र निर्माण अथवा मानवता के स्तर का उत्थान। आज के चल चित्रों में सिवाय काम वासना, तस्करी एवं हिंसा के अतिरिक्त कुछ भी नही होता। पहले जो गीत बनते थे उनमें राष्ट्र भक्ति, प्रभु भक्ति, प्रकृति सौन्दर्य की प्रशंसा एवं श्रद्धा की सीमा को छूता स्नेह भरा होता था जिसमें पवित्रता की झलक दिखाई देती थी। आजकल के गीत को गीत कहना गीत शब्द का अपमान करना है। सिवाय नग्नता के, कामोत्तेजक विचारों के उनमें और कुछ है ही नही। वातावरण ऐसा दूषित हो चुका है कि सांस लेना दुश्वार हो गया है। वातावरण में सुगन्धि पैदा करने के लिये आवश्यक है कि ऐसी सब पुस्तकों का और ऐसे साहित्य का बहिष्कार सामाजिक रुप एवं कानूनी तौर पर किया जावे और बच्चों को ऐसी पुस्तक पढ़ने के लिये दी जावे जिससे उनके चरित्र का निर्माण हो। बच्चों को धार्मिक, पथ–प्रदर्शक एवं राष्ट्र पर मर मिटने वाले व्यक्तियों का जीवन परिचय पढ़ने को दिया जाये और उनके ही चित्र घर मे लगायें जायें तथा चल चित्रों के नायक एवं नायिकाओं के चित्र किसी प्रकार भी घर में, स्कूलों में, कॉलिजों में, शिक्षा संस्थानों में न लाये जाये। गंदी फिल्में, गंदे ड्रामे चाहे वह रेडियो पर सुनाये जायें, टी.वी. पर दिखाये जायें या चलचित्र पर प्रदर्शित किये जा रहे हों का बहिष्कार किया जावे। इसी प्रकार गन्दे गानों का पूर्ण रुप से बाईकाट किया जावे। घर

में सुबह – शाम हवन किया जावे, भजन सुनें जायें, राष्ट्र स्तर पर एक आन्दोलन शुरु किया जावे कि अश्लील चित्र, फिल्में, ड्रामें एवं गीत बन्द हों। चरित्र हीनता को रोकने के लिये सख्त से सख्त कानून बनाये जायें और उन पर अमल भी किया जाये।

5.नारी जाति के प्रति अपमानजनक दृष्टिकोण :– एक वह भी समय था जब नारी के विषय में इतने उच्च विचार थे कि कहा जाता था ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तंत्र देवता '' जहां नारी की पूजा होती है वहां देवताओं का वास होता है। आज नारी को पांव की जूती समझा जाता है, नारी हर प्रकार के अपमान का पात्र है। कहने को तो उसका बराबर का हक, दर्जा, स्थान है पर वास्तविक रुप में वह पराधीन है। स्वयं की चरित्र हीनता पर पतिं को कोई कष्ट नही पर यदि उसकी पत्नी चरित्र हीन है तो वही पति उसका गला घोटने तक को तैयार हो जाता है। जब तक नारी को समाज में सम्मान के साथ उच्च स्थान नही दिया जाता, जब तक नारी में मां–बहन–बेटी के स्वरुप को देखा नही जाता, जब तक नारी की पवित्रता की पूजा नही की जाती तब तक यह भावना उठती रहेगी बढ़ती रहेगी और समाज एवं राष्ट्र की जड़ों को खोखला करती रहेगी।

वरुण अधिपति : मंत्र आगे कहता है कि जब काम वासना डोरे डालने लगे तो प्रभु परमेश्वर के वरुण होने के गुण का स्मरण करो। वह ईश्वर वरुण है। वरुण का पहला अर्थ है चयन करना। पत्नी जब पति के गले में जयमाला (फूलमाला) डालती है तो वह पति का वरुण करती है। इसीलिये उस माला को वरमाला कहा जाता है और पति को पत्नी का वर कहा जाता है।

प्रतिदिन समाचार पत्रों में इश्तहार छपते हैं "कन्या के लिये सुयोग्य वर की आवश्यकता है।" बालक साईकल के लिये रोता है। पिता उसको दुकान पर ले जाता है। वहां एक विशेष साईकल को वह पसन्द करता है। बच्चे ने साईकल का वरुण कर लिया। मनुष्य कभी साईकल का, कभी स्कूटर का, कभी कार का, कभीं कोठी का, कभी पत्नी या पति का वरुण करता है और सुख प्राप्त करता है। सुख इन्द्रियों का विषय है। कभी किसी साधन से, कभी किसी से। कभी उसकी आंख को सुख, किसी से नाक को, किसी से कान को, किसी न किसी इन्द्रिय से उसको सुख मिलता रहता है। पर यह सब सुख अस्थाई हैं। साईकल टूट गया तो सुख दुःख में परिवर्तित हो गया। किताब का वरुण किया और किताब फट गई तो दुःख। पत्नी का वरुण किया और वह मर गई या उसके साथ विचार न मिले तो दुःख। पति मर गया तो दुःख। कभी व्यक्ति की काम

वासना न पूरी हुई तो दुःख या न पूरी होने पर अपमानजनक स्थिति पैदा हो गई तो दुःख।

तो फिर क्यों न ऐसी वस्तु का वरुण किया जावे जिसके वियोग से कभी दुःख न हो। संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नही जिसका वियोग न हो। केवल परमात्मा ही ऐसी शक्ति है जिसका वियोग नही। उसका एक बार वरुण कर लिया तो दुःख आने का प्रश्न ही नही। आनन्द ही आनन्द है। इसीलिये गायत्री मंत्र में शब्द हैं "तत्सवितुर्वरेण्यं।" तत् का अर्थ है वह, सविता का अर्थ है परमात्मा और बरेण्यम् का अर्थ है वरण करने योग्य। वही परमात्मा सृष्टि का उत्पादक है वरण करने योग्य है उसी का हम वरुण करें। उसी का चयन करें उसी को जीवन साथी बनायें। मीरा ने कृष्ण का वरुण किया, क्योंकि उसने कृष्ण को भगवान माना।

ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी।
मेरा दर्द न जाने कोई।।

और फिर

दर्शन जल की प्यासी मीरा।
पी गई विष का प्याला।।
और फिर अर्ज करी कि
लाज राखो राखो राखो।।

और फिर

मेरे तो गिरधर गोपाल।
दूसरा न कोई।।

इसी प्रकार हवन की समाप्ति के पश्चात भी मंत्र बोला जाता है

ओ३म् शन्नो मित्रा शम् वरुणा

वह प्रभु सबसे अच्छा मित्र है। उससे मित्रता रखने में ही कल्याण है और शम् वरुणा, उसको वरण करने में ही मनुष्य का कल्याण हो जाता है। इसलिये यह मंत्र हमें सिखाता है कि काम अवस्था को दूर रखने के लिये प्रभु के वरुण गुण को याद करें। उसी का वरुण किया जावे।

वरुण का दूसरा अर्थ है सब संसार को आच्छादित करने वाले अर्थात सबको ढांकने वाला। वह परमात्मा ही है जो महान है। वह सबकी लाज रखता है। सबके

अवगुणों को ढांककर रखता है। यदि कोइ व्यक्ति भोग विषय का कुकर्म करता पकड़ा जाता है तो उसके चर्चे गली मुहल्ले में हो जाते हैं। समाचार पत्रों में समाचार छप जाते हैं। वह अपना मुंह छिपाता फिरता है। जहां उसके अपमान का समाचार नही पहुंचता उसके शत्रु यह कार्य करने में सशक्त रहते हैं। यदि शत्रु से यह काम न बन पाये तो मित्र कौन से पीछे रहने वाले होते हैं। यह कह कर कि एक विशेष बात कह रहा हूं गुप्त रखना, हर एक को सुनाते जायेंगे। पर परमात्मा ऐसा नही करता। वह दण्ड भी देता है पर अन्य किसी को पता भी नही लगने देता। दुर्घटना में यदि किसी का हाथ कट गया है तो यह सब जानते हैं कि उसे किसी कुकर्म की सजा मिली है। परन्तु किस कुकर्म की सजा मिली है यह कोई नही जानता। यदि पता लग जाये कि उस मनुष्य ने क्या घिनौना कार्य किया था जिस कारण परमात्मा ने उसे यह दंड दिया तो शायद यह जानने पर कि वह कितना पापी है लोगों के मन में उस व्यक्ति के प्रति इतनी घृणा हो जायेगी कि लोग उसकी एक टांग तो क्या दूसरी भी तोड़ देंगे। पर अब क्योंकि लोगों को पता नही कि किस कुकर्म का दण्ड भगवान ने उसे क्यों दिया है इसलिये लोग उससे सहानुभूति करते हैं और यथायोग्य उसकी सहायता भी करते हैं। इसलिये उस वरुण को अपना अधिपति मानें किसी अन्य को नही।

वरुण का तीसरा अर्थ है जल देवता। जैसे जल का प्रयोग काम वासना की उत्तेजना को शान्त करता है वैसे तूं प्रभु की शरण में चल। वह वरुण तुझे इस अभिशाप से मुक्त कर सकता है। वही तेरा अधिपति है। वही तेरा स्वामी है, बाकी सब बन्धु झूठे हैं वही एक सच्चा बन्धु है।

पृदाकु रक्षिता

पृदाकु का अर्थ है अजगर। यह काम वासना एक विषैला सांप अजगर है। हे मानव इस अजगर से अपनी रक्षा कर। सांप का काटा तो बच सकता है परन्तु अजगर का काटा कभी नही बचता। कामी व्यक्ति की शारीरिक मृत्यु भले ही न हो उसकी सामाजिक मृत्यु अवश्य हो जाती है जो कि शारीरिक मृत्यु से बहुत बुरी है। ऐसा व्यक्ति मुंह दिखाने के काबिल नही रहता। मोह से व्यक्ति की बुद्धि पर पर्दा पड़ता है। लोभ से उसका दीन ईमान चला जाता है और कामी व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता खो बैठता है। स्वयं उसके परिवार के लोग उससे घृणा करना शुरु कर देते हैं। ऐसा व्यक्ति धोबी के कुत्ते की तरह न घर का न घाट का बन कर रह जाता है। न समाज उसे पसन्द करता है न परिवार।

अन्नमिषवः–

कैसे ऐसे व्यक्ति का कल्याण हो? मंत्र कहता है कि अनं इषवः। उसकी सुरक्षा का बाण अन्न है।

अन्न का पहला अर्थ है संयम – जितेन्द्रिय चरित्रवाण व्यक्ति। भगवान राम 14 वर्ष माता सीता के साथ वन में रहे। परन्तु इतना संयम रखा कि पूर्णतया ब्रह्मचर्य का पालन किया। वीर हनुमान, भीष्म पितामह ने पूरे जीवन काल में ब्रह्मचर्य का पालन किया। कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्तियों पर झूठा इल्जाम भी नही लगा सकता। ऐसे व्यक्तियों के जीवन चरित्र को पढ़ कर इस वासना को समाप्त किया जा सकता है।

अन्न का दूसरा अर्थ है संयमी लोग। स्वामी राम तीर्थ ने एक बार विदेश में कहा कि कल मेरा प्रवचन केवल पांच मिन्ट का होगा। अगले दिन लोग उमड़ पड़े यह देखने के लिये कि यह व्यक्ति पांच मिन्ट में क्या कुछ बतायेगा। स्वामी जी ने इतना कहा कि जो व्यक्ति विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है समझ लो उसने समस्त विश्व पर विजय प्राप्त कर ली।

स्वामी दयानन्द जी ने ब्रह्मचर्य का व्रत पालन जिस प्रकार किया कि वह अपने आप में एक उदाहरण है। उनके ब्रह्मचर्य को भंग करने लिए, उनको बदनाम करने के लिए, उनकी काम वासना को जागृत करने के लिए क्या–क्या षडयंत्र नही रचे गये। कभी कभी वैश्या को भेजा गया तो कभी नर्तकी को। पर विरोधियों की सब योजनाओं पर पानी पड़ गया और हर परीक्षा में वह सोने से कुन्दन बनकर निकले।

अन्न का तीसरा अर्थ है खाद्य सामग्री। मंत्र कहता है कि मनुष्य काम वासना से बचने के लिये ऐसा अन्न न खाये जिससे काम वासना उत्तेजित हो बल्कि ऐसा अन्न प्रयोग करे जो कि उसे शान्त रखे।

षष्ठम् अध्याय

क्रोध

ओ३म् उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः।

मनसा परिक्रमा का यह चौथा मंत्र है। इसको उतना ही लिखा गया है जितना यह शेष मंत्रों से भिन्न है। यह मंत्र
क्रोध पर नियन्त्रण पाने का उपदेश देता है। शब्दार्थ इस प्रकार है –

उदीचीदिक्:

उदीची का अर्थ है बाईं अर्थात उत्तर । दिक् का अर्थ है दिशा। उदीचीदिक का अर्थ हो गया उत्तर की दिशा। उत का अर्थ ऊंचा भी है और उत का अर्थ श्रद्धा भी है। जब व्यक्ति ऊंचा उठने लगता है क्रोध उसका सबसे बड़ा शत्रु बन कर सामने आ जाता है। वह जहां ऊपर जा रहा था वहां धड़ाम से नीचे गिर जाता है। जहां लोग उसको श्रद्धा से पूजते थे, उसके क्रोध को देखकर उससे घृणा करने लगते हैं।

हरियाणा में डबवाली शहर में डी.ए.वी. हाई स्कूल का वार्षिक उत्सव हो रहा था। बड़ा सुसज्जित पंडाल था। बहुत सुन्दर सुन्दर कुर्सियां सोफे पंडाल में बिछाये गये थे। धरती पर बिछी कालीन और सुन्दर दरियां पंडाल की शोभा को चार चांद लगा रही थी। श्रोतागण, उच्चाधिकारी, नगर के बुद्धिजीवी बहुत सुन्दर वेशभूषा में बैठे थे। बच्चों का रंगारंग कार्यक्रम चल रहा था। नन्ही नन्ही कलियां मानों मोती बिखेर रही हों। वादक मधुर संगीत सुना रहे थे। सब ओर हर्ष और उल्लास का वातावरण था। अचानक कहीं से आग की चिंगारी गिरी। आग ऐसी बढ़ी कि भगदड़ मच गई। उत्सव वहां ही समाप्त हो गया। आग ने 1000 व्यक्तियों को पांच मिनट के समय में मौत के घाट उतार दिया। न वहां पंडाल की सुन्दरता दिखाई दे रही थी, न कुर्सीयों सोफों की चमक रह गई थी और न ही महसूस हो रहा थी दरियों और कालीनों में लचक। बस आग की लपटें दौड़ रही थी। वादकों की धुन, बच्चों के नाच की ध्वनि, न जाने कहां छिप गई ? कोहराम मच गया। हर कोई अपने आप को बचाने में लग गया और दस मिनट के बाद मरघट का नजारा बनकर रह गया वह चमचमाता उत्सव। ठीक यही हाल मनुष्य

का है। उसका बड़ा सुसज्जित सुसंस्कृत जीवन जिसमें शुद्धता मानवता के सभी गुणों से गठित एक सुन्दर पंडाल है, परोपकार रुपी सुन्दर कुर्सीयां और सोफे लगे हैं, दयारुपी वादक मीठे संगीत का आलाप कर रहे हैं, मृदुता रुपी दरियां और कालीन बिछे हैं। सन्तान सुसंस्कृत होने से परिवार में हर्ष उल्लास से सबके चित्तों में प्रसन्नता की लहर दौड़ी रहती है। अचानक उस व्यक्ति के मन में किसी भी कारण से क्रोध की चिंगारी भड़क उठती है। तब वह सभी बन्धन तोड़ देता है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। हिंसा पर न सही कम से कम गालीयों पर उतारु हो जायेगा। न जाने क्रोध की अग्नि में जलता हुआ क्या कुछ कर देगा और पंडाल जल कर राख हो जायेगा। वैसे भी उसकी सारी योग्यता, उसके सारे गुण, सारे संस्कार, सारा श्रेय, सारी उपलब्धियां वहीं की वहीं समाप्त हो जायेंगी। उसके पश्चात मंत्र में है –

सोमोऽधिपति :– यहां परमात्मा के नाम को सोम के नाम से सम्बोधित किया गया है। सोम का अर्थ परमात्मा का शीतलता का गुण है। सोम का अर्थ दया है। जब मनुष्य का स्वभाव दया का हो जाये तो वह सोम रुप बन जाता है। यह मंत्र उपदेश देता है कि जब व्यक्ति को क्रोध आये तो वह प्रभु के सोम होने के गुण को धारण करके अपने अन्दर सोम्यता को लावे।

महाराजा रणजीत सिंह एक बार अपने राज्य के निरीक्षण के लिये किसी गांव के पास से गुजर रहे थे। अचानक एक बालक ने एक वृक्ष पर जिसमें फल लगे हुये थे पत्थर मारा ताकि फल टूट कर उसे मिल सके। वह फल तो नही टूटा पर वह पत्थर महाराज के सिर पर लगा जिससे महाराज को चोट आई। झट से महाराज का आदेश हुआ कि अगले दिन बालक को राज दरबार में पेश किया जाये। यह आदेश हुआ कि उसके पिता को भी साथ में आने के लिये कहा जाये। जिस गांव में वह बालक रहता था वहां के पटवारी को भी बुलाया गया। अब सब लोग चिंतित थे कि महाराज गम्भीर रुप से घायल हैं। बालक को और उसके पिता को दंड दिया जायेगा। जिस खेत में वह वृक्ष लगा है वह खेत जब्त कर लिया जायेगा। बालक के पिता के पास यदि कोई सम्पत्ति है तो उसे भी सरकार की सम्पत्ति घोषित कर दी जायेगी। अगले दिन राज दरबार में सभी पेश हुए। महाराज ने पूछा कि बालक तूने मेरे सिर पर पत्थर क्यों मारा ? इससे पहले कि बालक कुछ उत्तर देता पिता हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। क्षमा याचना करने लगा और जान की भीख मांगने लगा। महाराजा ने गर्ज कर कहा चुप रहो मैं तुम से बात नही

कर रहा हूं। मैं प्रश्न इस बालक से कर रहा हूं जब तुम्हारी बारी आयेगी जो पूछना होगा तुमसे पूछूंगा। पिता डर कर चुप हो गया। वही प्रश्न बालक से फिर पूछा गया। बालक ने कहा कि मैं वृक्ष से फल लेना चाहता था। मैंने फल तोड़ने के लिये पत्थर फैंका था जो अनजाने में महाराज के लग गया। महाराज ने बालक से फिर पूछा कि क्या तुम्हें विश्वास है कि पत्थर फैंकने से वृक्ष फल देगा। बालक ने उत्तर दिया कि हां मुझे पूरा भरोसा था। फिर उसके पिता से पुछा गया कि तुम्हारे पास इस गांव में कितनी भूमि है ? पिता ने फिर हाथ जोड़कर कहा कि महाराज मैं निर्धन हूं, भूमिहीन हूं, मुझे क्षमा किया जावे। भविष्य में ऐसा अपराध कभी नही होगा। फिर महाराज ने पटवारी से पूछा कि इस गांव में सरकार की कितनी भूमि है ? पटवारी से उत्तर पाकर राजा ने निर्णय सुनाया कि बालक को सरकार की ओर से पांच एकड़ भूमि दी जाये। सभी हैरान हो गये कि हमने क्या सोचा था और क्या हुआ। राजा ने कहा कि देखो वृक्ष को बालक पत्थर मारता है बदले में वह फल देता है। मनुष्य को यदि कोई पत्थर मारे और वह क्रोधित होकर आगे से उस पर वार करे तो दोनो में क्या अन्तर रह गया। वह तो वृक्ष से भी नीचे की श्रेणी में गया। वृक्ष को पत्थर मारने से यदि बालक को फल मिल सकता है तो राजा को पत्थर लगने से क्यों न इसे पांच एकड़ भूमि दी जाये। इस बालक ने जानबूझ कर राजा को घायल करने के लिये तो पत्थर नही मारा था। यह है सोम्यता। यदि राजा क्रोधित हो जाता तो वही होना था जो लोग सोच रहे थे।

एक बार स्वामी दयानन्द के पास एक व्यक्ति आया। उसने स्वामी जी को बहुत सारी गालियां दीं। स्वामी जी चुपचाप सुनते रहे। जब वह चुप हो गया तो स्वामी जी से बोखला कर पूछता है कि स्वामी जी मैने इतनी सारी गालियां आपको दीं आपने न तो किसी का उत्तर दिया और न ही अपने मन की शान्ति को भंग किया। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि देखो यदि आप मेरे लिये एक थाली में मिठाई डाल कर ले आओ और मैं न लूं तो वह मिठाई किसकी ? उस व्यक्ति ने कहा कि यदि आप ग्रहण नही करेंगे तो वह मिठाई लाने वाले की रह जायेगी। स्वामी जी ने कहा आप मेरे लिये गालियों का उपहार लाये। मैने स्वीकार नही किया अब यह गालियां किसके लिये रह गई? लाने वाले के लिये, मिठाई के थाल के भान्ति। वह व्यक्ति बड़ा लज्जित हुआ। स्वामी जी ने कहा सुनों मेरे मन पर मेरा नियन्त्रण है, तुम्हारा नही। यह नही कि तुम मुझे आदेश दो कि अब क्रुद्ध हो जाओ तो मैं क्रुद्धहो

जाऊं। मैं आपके इशारे पर न तो क्रुद्ध हो सकता हूं और न ही आपकी चिकनी–चुपड़ी बातों से प्रसन्न हो सकता हूं। मैं तुम्हारा दास नही कि तुम जो चाहो अपने मन की व्यवस्था को मैं वैसे रखूं। मैं अपना स्वामी आप हूं। जैसे चाहूंगा वैसे ही रहूंगा।

दादु भक्त की भक्ति के चर्चे दूर दूर तक फैले थे। एक बार एक पुलिस अधिकारी के मन में इच्छा हुई कि दादु भक्त के दर्शन किये जायें। घोड़े पर सवार होकर वह चल दिया दादु भक्त के निवास स्थान की ओर। रास्ते में एक व्यक्ति घास काट रहा था। उस पुलिस अधिकारी ने पूछा कि दादु भक्त कहां रहता है ? घास काटने वाले ने कोई उत्तर नही दिया। हां होंठों पर मुस्कान की झलक अवश्य आ गई। उसके फिर पूछने पर उस घास काटने वाले व्यक्ति पर फिर मुस्कान ने उसके मुख को सुशोभित किया। पुलिस अधिकारी ने इसे अपना अपमान समझा कि व्यक्ति मेरी किसी बात का उत्तर न देकर आगे से हंस कर मेरी हंसी उड़ा रहा है। वह घोड़े से नीचे उतरा। उसने घास काटने वाले की निर्दयता से पिटाई कर दी और फिर आगे को बढ़ा। थोड़ी दूर गया तो एक व्यक्ति से उसने फिर पूछा कि दादू भक्त को देखा है क्या ? कहां मिल सकते हैं ? उस व्यक्ति ने बताया कि वह तो पीछे रह गया। थोड़ी दूर पीछे चले जाओ रास्ते में एक व्यक्ति घास काट रहा होगा उसी का नाम दादु भक्त है। पुलिस वाला वापिस आया तो देखा कि वही व्यक्ति उसी प्रकार आनन्दित होकर घास काट रहा है। अब पुलिस कर्मचारी को अपनी भूल का ज्ञान हुआ और उसने घोड़े से उतर कर दादु भक्त के चरण पकड़ कर क्षमा याचना की। यह होती है सोम्यता और उसके बाद मंत्र में शब्द हैं –

स्वजो रक्षिता :– स्वजो का अर्थ है अपने आप उत्पन्न होने वाला। मनुष्य के अन्दर क्रोध अपने आप उम्पन्न होता है। वैसे तो क्रोध के पैदा होने के कई कारण हैं पर सभी कारण इस बात पर आकर केन्द्रित हो जाते हैं। फिर भी क्रोध को पैदा करने के कुछ कारणो पर विचार किया जाता है।

1 द्वेष :– क्रोध प्रायः द्वेष से पैदा होता है। एक डाक्टर या वकील जब यह देखता है कि अमुक डाक्टर या वकील जिसने व्यवसाय मेरे बहुत से पश्चात शुरु किया था, अच्छी कमाई कर रहा है और मेरा काम थोड़ा है तो द्वेष पैदा हो जाता है। ऐसी दशा दुकानदारों की भी होती है। कर्मचारी देखता है कि दूसरे कर्मचारी

की तो पदोन्नति हो गई मेरी क्यों नही तो वह द्वेष रखता है। एक कर्मचारी को उसका उच्चाधिकारी ज्यादा मान देता है तो द्वेष बढ़ गया। एक नेता जब देखता है कि दूसरा नेता अधिक लोकप्रिय हो रहा है तो द्वेष ने जन्म ले लिया। दोनों व्यक्ति जब भी द्वेष भावना से एक दूसरे के समक्ष आते हैं तो दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति द्वेष जागता है। फिर दोनों एक दूसरे को नुकसान पहुंचाने की योजना बनाते हैं। लड़ाई तक की भी कई बार नौबत आ जाती है और फिर क्रोध अपना चमत्कार दिखाने लग पड़ता है। इसलिये द्वेष का त्याग आवश्यक है।

2 इच्छा पूर्ति का अभाव: क्रोध का दूसरा कारण है कि जब व्यक्ति की इच्छा पूरी नही होती उसकी योजना अनुसार कार्य नही किया जाता तो क्रोध्र जन्म लेता है। पिता की आज्ञा पुत्र नही मानता तो क्रोध सिर चढ़कर बोलने लग जाता है। पुत्र कोई परामर्श देता है और पिता नही मानता तो क्रोध, पति पत्नी के प्रति, पत्नी की पति के प्रति, पुत्र को माता पिता के प्रति और माता पिता को पुत्र के प्रति, भाई को भाई के प्रति, मित्र को मित्र के प्रति इत्यादि आकाक्षांयें होती हैं जब वह पूरी नही होती तो क्रोध उत्पन्न होता है। इसलिये व्यक्ति इच्छाओं और आकांक्षाओं को सीमित करे और इतना कम कर दे कि पूरी न होने पर क्रोध न आये।

3 कठोरता :– क्रोध की उत्पत्ति का एक अन्य कारण है कठोरता। मनुष्य स्वाभिमान का आश्रय लेता है और इस ध्येय का प्राप्ति के लिये कठोरता को अपने अन्दर पैदा करता है। कभी वह यह कहता है कि मैं सब कुछ कर सकता हूं पर नैतिकता को कुर्बान नही कर सकता। ऐसी दशा में उसे हालात से लड़ना पड़ता है। जहां भी उसके स्वाभिमान को धक्का लगता है वहां ही वह क्रूद्ध हो जाता है। और मुकाबला करने पर उतारु हो जाता है। यदि जीत गया तो क्रोध अंहकार को जन्म देता है और यदि हार गया तो क्रोधाग्नि में अन्दर ही अन्दर सुलगने लगता है। कठोरता बहुत अच्छी है यदि धर्म के लिये हो। वीर हकीकत राय ने कठोरता रखी और अपनी जान दे दी। स्वामी दयानन्द ने कठोरता रखी और शहीद हो गये। लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० लेखराम, गुरुदत्त विद्यार्थी इत्यादि धर्म पर कुर्बान हो गये। महात्मा गांधी ने कठोरता रखी और भारत को स्वतन्त्र करवा लिया। ऐसे व्यक्ति जब कठोर होते हैं तो वे क्रुद्ध नही होते। पर

जो व्यक्ति धर्म से विपरीत कठोरता रखता है यदि वह कठोरता रखता है तो अपनी जान गंवा लेता है। रावण कठोर रहा कि मैने सीता को नही छोड़ना। उस कठोरता ने अंहकार को पैदा किया।जब सब ने राम की प्रशंसा की तो द्वेष पैदा हो गया। फिर क्रोध पैदा हुआ, युंद्ध पर उतारु हुआ और अन्ततः सर्वनाश हुआ।

अशनि इषवः

अशनि का अर्थ है सर्वव्यापक शक्ति। इषवः का अर्थ है दूर करने वाला। वह सर्वव्यापक परमपिता परमात्मा ही हमें इस क्रोध से दूर रख सकता है। उसकर कृपा से मनुष्य क्रोध से दूर रह सकता है। अशनि का दूसरा अर्थ है विद्युत जो क्षण में ही अपना प्रभाव प्रगट कर देती है। क्षणिक चमत्कार होता है फिर गुम हो जाती है पर इसका प्रभाव स्थित रहता है। जैसे व्यक्ति को एक सैकिण्ड के लिये बिजली की नंगी तार छू जाये और फिर क्रंट बन्द हो भी जाये तो इतने में ही शरीर का वह भाग जहां बिजली छुई थी जल जाता है और दर्द कई दिन तक रहता है। न भी शरीर जले विद्युत का प्रभाव शरीर पर कई दिन तक रहता है। ऐसे ही पैदा हुआ क्रोध भले ही उसी समय शांत हो जाये उसका प्रभाव मन एवं शरीर पर कई दिन रहता है। बिजली क्षण भर बादलों में चमकती है फिर किसी खेत या वृक्ष पर गिरती है। यह सब कुछ सेकिण्डों में ही समाप्त हो जाता है। पर खेत में जो आग लगती है वृक्ष के पत्ते जो जल जाते हैं वह लौट कर नही आते। क्रोध जिस रक्त को जला डालता है वह रक्त कभी वापिस नही आता। क्रोध का प्रभाव शरीर, मन और आत्मा तीनों पर पड़ता है। जब क्रोध आता है रक्त जलता है, रक्त चाप तेज हो जाता है, उर्जा का जलन होता है, शरीर में शिथिलता आती है और स्मृति मंद पड़ जाती है। बुद्धि अपना काम करना बन्द कर देती है। कई रोग शरीर में घुस जाते हैं। यहां तक कि व्यक्ति की हृदय गति बन्द होने से मृत्यु तक हो सकती है। क्रोध का मन पर भी प्रभाव पड़ता है। मन की शान्ति भंग हो जाती है। किसी से बात करने को मन नही करता। अपने भी पराये दिखाई देने शुरु हो जाते हैं।

क्रोध में आकर कभी–कभी मनुष्य दूसरे की जान भी ले लेता है नही तो क्रोध में आकर गाली बकना तो स्वाभाविक ही हो जाता है क्योंकि वह निश्चय नही कर पाता कि क्या बोलना है और क्या नही। यदि किसी को अपशब्द कहे तो उससे सम्बन्ध विच्छेद हो गया। अपने पराये हो जाते हैं। जो आग दूसरो को लगाना चाहता है स्वयं उसमें भस्म हो जाता है। उसकी मानसिक शक्ति क्षीण हो जाती है।

क्योंकि जब उसके पास किसी तर्क का उत्तर नही तो वह क्रुद्ध हो जाता है। आत्मा का आनन्द छीना जाता है और प्रभु से मिलन का रास्ता बन्द हो जाता है। ऐसा व्यक्ति भीरु हो जाता है। हर समय डरता रहता है कि जिस व्यक्ति पर उसने क्रोध किया था वह उसे कोई हानि न पहुंचाये और भय को दूर करने के लिये योजना बनाता रहता है कि कैसे शत्रु से निबटे। कभी आक्रामक हो जाता है तो कभी भीरु बनकर अपने आपको बचाने के लिये छिपाता फिरता है। क्रियात्मक एवं रचनात्मक कर्मो की ओर तो उसका ध्यान जा ही नही सकता प्रभु भक्ति तो क्या करनी।

क्रोध को टालने का सबसे आसान ढंग यह है कि क्रोध में कोई निर्णय न लिया जाये क्योंकि क्रोध में लिया गया निर्णय हमेशा हानिकारक होगा। क्रुद्ध अवस्था में लिया गया निर्णय और क्रोध शान्त होने के एक सप्ताह बाद के निर्णय हमेशा अलग–अलग होंगे और परिणाम भी अलग–अलग। क्रोधावस्था का निर्णय दु:ख का उत्पादक होगा और शान्त अवस्था में लिया गया निर्णय सुखद होगा।

अशनि का तीसरा अर्थ है योग अवस्था। क्रोध योग अवस्था से कम किया जा सकता है और क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है। क्रोध को जीत लेने पर ही योगी को सोम अवस्था प्राप्त होती है और फिर ऐसे व्यक्ति के मन में दया का भाव उत्पन्न होता है और उस व्यक्ति के प्रति योगी क्रोधित होने की बजाए दया भाव से क्षमा भावना को मन में लाता है। स्वामी दयानन्द योगी थे। उन को विषपान करवाने वाले जगन्नाथ पर भी क्रोध नही किया बल्कि स्वामी को जगन्नाथ पर दया आ गई कि पुलिस इसको पकड़ लेगी। इस पर मुकद्दमा चलेगा बेचारा मारा जायेगा। घर बर्बाद हो जायेगा परिवार का क्या बनेगा। इस दया भाव से स्वामी जी ने जगन्नाथ को क्षमा कर दिया और उसे अपनी जेब से पैसे देकर भगा दिया कि पुलिस तुझे तंग न करे।

मोह से बुद्धि पर पर्दा पड़ता है, लोभ से मनुष्य का ईमान चला जाता है, काम से मनुष्य की श्रेष्ठता चली जाती है और क्रोध से मनुष्य की सौम्यता चली जाती है और मनुष्य एक क्रुद्ध जीव बनकर ही रह जाता है।

सप्तम् अध्याय

अंहकार

ओ३म् ध्रुवादिग्विविष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः।

मनसा परिक्रमा का यह पांचवा मंत्र है यह भी आंशिक रुप में उतना ही लिखा गया है जितना अन्य मंत्रों से भिन्न है। यह मंत्र अंहकार के विष्य में प्रकाश डालता है। मंत्र का आरम्भ इन शब्दों से होता है –

ध्रुवा दिक् :–

ध्रुवा – नीचे की   दिक् – दिशा

मनुष्य अब नीचे की ओर परिक्रमा करता है। मनुष्य को अंहकार ऊपर से निचे की ओर ले जाता है। अंहकार शब्द का जन्म अहम् से हुआ है। ''अहम् ''का अर्थ है मैं। जिस व्यक्ति में ''मैं' ने प्रवेश कर लिया मानों उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का ही नाश हो गया। वह हर समय हर बात में मैं का गीत अलापता रहता है। किसी को इस बात का अंहकार है कि मैं बहुत सुन्दर हूं। किसी को इस बात का कि मैं बहुत बलवान हूं तो किसी को इस बात का कि मैं बहुत विद्वान हूं। किसी को इस बात का कि मैं बहुत धनी हूं तो किसी को इस बात का कि मैं बहुत धर्मात्मा हूं।

विष्णुः अधिपति :– ऐसे व्यक्तियों का स्वामी विष्णु है। विष्णु का अर्थ है सर्वव्यापक। किसी व्यक्ति को यदि यह अंहकार है कि वह नगर पिता है तो जब नगर प्रधान को देखता है तो अंहकार धीमा पड़ जाता है। नगर प्रधान जब जिला प्रधान को देखता है तो वह सोचता है कि वह तो कुछ भी नही जिला प्रधान कितना बड़ा व्यक्ति है। और जब जिला प्रधान प्रान्त के मुख्यमन्त्री को देखता है तो वह चुप हो जाता है। मुख्यमन्त्री जब प्रधान मन्त्री को देखता है तो वह अपने आप को छोटा समझने लगता है। पर जब मनुष्य विष्णु को देखता है कि वह समस्त सेसार का स्वामी है, घट–घट में समाया है, मैं तो उसके सामने कुछ भी नही तो उसका अंहकार स्वयं टूट जाता है। जिसको सत्ता का अंहकार है वह विष्णु की सत्ता पर ध्यान दे, जिसको अपनी सुन्दरता का अभिमान है वह विष्णु की

सुन्दरता को देखे। प्रकृति में भांति–भांति के फूल, झरने, वृक्ष, पहाड़, नदी, नाले, समुद्र और दिल को लुभाने वाले दृश्य हैं। मानव तेरी सुन्दरता उसके आगे कहां टिकेगी।

किसी को अपने शरीर पर नाज है। पर यह शरीर आज तो बहुत सुन्दर है कल बुढ़ापा आ जायेगा। चला तेरे से नही जायेगा, बोला तेरे से नही जायेगा, बाल सफेद हो जायेंगे, मुंह में से थूक की लारें निकलेंगी, नाक बहेगा पर तेरे पास संभालने के लिये रुमाल तो होगा पर इतनी शक्ति नही होगी कि रुमाल का तूं स्वयं प्रयोग कर सके। तेरी गालें पिचकी होंगी। कहां गई तेरी सुन्दरता और फिर कुछ दिनों के बाद यह शरीर भी तेरा साथ छोड़ देगा जिस पर तूं इतना गर्वित था। मानव तूं ध्यान कर उस विष्णु का जो सदा सुन्दर है कभी बुढ़ा नही होता कभी मरता नही।

तुझे अपने पर अभिमान है। तेरा धन लाखों में न सही करोड़ों में होगा और छलांग लगा ले अरबों में होगा और छलांग लगा ले खरबों में होगा। छलांग लगाता जा कहीं तो सीमा होगी तेरे धन की। पर उस विष्णु के पास तो असीमित धन है। सब हीरे–जवाहरात, सोना–चांदी, खनिज पदार्थ, कोयला, गैस, पैट्रोलियम, फल–फूल, वनस्पति और क्या कुछ नही। सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी, आकाश सब उसी की सम्पत्ति है। कहां तूं और कहां विष्णु। तेरा क्या मुकाबला उससे।

तुझे अंहकार है अपने ज्ञान पर अपनी विद्वता पर। क्या पढ़ा है बी.ए. नही एम.ए. और क्या पी.एच.डी. और डी.लिट. बस । अरे वह तो ज्ञान स्वरुप है। तूं सांईस जानता है, विज्ञान जानता है तो ईतिहास नही। ईतिहास जानता है तो भूगोल नही। भूगोल जानता है तो शास्त्र–ज्ञान नही। एक में निपुण तो दूसरे में कोरा। पर वह सर्वज्ञ है। फिर अंहकार कैसा ?

कल्माषग्रीवो रक्षिता :–

कल्माषग्रीवो का अर्थ है अकड़ी गर्दन अर्थात अंहकार युक्त गर्दन। प्रभु मेरी रक्षा करो कि मेरी गर्दन कभी अकड़ी न रहे। इसमें नम्रता हो लचक हो और यह झुकना ही जाने।

रावण को अंहकार था अपने बल का। उसको अंहकार था अपनी सेना का। उसको अंहकार था अपनी विद्वता का। उसने किसी की नही मानी। गर्दन अकड़ी रही। स्वयं भी गया परिवार भी गया, राज्य भी गया और लंका भी गई।

दुर्योधन को अंहकार था अपने बल का, अपनी सेना का, अपने चातुर्य का, अपने पिता का, परिवार के मुखी होने का और अन्ततः परिणाम क्या हुआ ? स्वयं भी मारा गया और सभी भाई भी रणक्षेत्र की भेंट चढ़ गये। कंस को अभिमान था अपने बल एवं चातुर्य पर। क्या–क्या हथकंडे उसने नही अपनाये कि कृष्ण का वध जन्म के तुरन्त पश्चात ही हो जाये और उसका अपना वध कृष्ण के हाथों ही हुआ। पाकिस्तान के 1970 के प्रधान मन्त्री श्री जुल्फकार अली भुटटो को बहुत अंहकार था कि वह भारत के साथ सौ साल तक युद्ध करने में सशक्त है, परन्तु थोड़े दिनों के पश्चात ही युद्ध विराम करना पड़ा और पाकिस्तान का एक बड़ा भाग बंगलादेश बनकर पाकिस्तान से जुदा हो गया। ईराक के प्रधान सद्दाम हुसैन को भी अपनी सत्ता, बल एवं पैट्रोलियम सम्पत्ति पर बहुत अभिमान था। उसने कुवैत राज्य पर कब्जा कर लिया। अमेरिका ने उसे चेतावनी दी पर उसने इस चेतावनी को ठुकरा दिया। परिणाम क्या हुआ युद्ध और सद्दाम की पराजय। ईराक उन्नति में सौ साल पिछड़ गया। ऐसे एक नही इतिहास में सैंकड़ों बल्कि हजारों और लाखों उदाहरण मिलेंगे जहां अंहकार का सिर नीचा हुआ है। वास्तव में अंहकार तब ही पैदा होता है जब मनुश्य में पशु वृति जागती है। अंहकार की दृष्टि से मनुष्य को बाज की श्रेणी में रखा जाता है। अंहकारी मनुष्य में धीरता, गम्भीरता एवं दृढ़ता उड़ जाती है।

वीरुध इषवः

वीरुध का अर्थ है लता अथवा पेड़ आदि। लता बहुत कमजोर होती है कभी उसे अभिमान नही हो सकता कि वह सबल है क्योंकि उसकी टहनी बारीक है पर फिर भी फल–फूल इत्यादि को लेकर भवन की किसी भी मंजिल तक पहुंच जाती है। क्यों ? क्योंकि उसमें नम्रता है। जिस पेड़ पर फल लगते हैं वह झुक जाता है। जो व्यक्ति किसी के काम आता है वह नम्र होता है। जिस पेड़ पर फल नही लगता वह ऊंचा ही ऊंचा होता जाता है। अंहकारी व्यक्ति अपनपे आप को बहुत ऊंचा समझता है पर वह किसी को फल नही देता। उसका लाभ समाज के किसी भी क्षेत्र में नही होता।

वीरुध का दूसरा अर्थ है नीचे से ऊपर जाना और अंहकार का अर्थ है ऊपर से नीचे आना। वीरुध का अर्थ अंहकार के अर्थ के उल्ट है। यदि अंहकार

का भाव अकड़ी गर्दन है तो वीरुध का भाव नम्रता है। अंहकार का नाश नम्रता से हो सकता है। नम्र व्यक्ति कभी अंहकारी नही होगा। वास्तव में यदि साधक में नम्रता आ जाये तो वह देवता स्वरुप हो जाये।

वीरुध का तीसरा अर्थ है ब्रह्म ज्ञानी। विविध प्रकार के उपदेश करने वाला वेद और विद्याओं का ज्ञाता। ब्रह्म ज्ञानियों का संग अंहकार के नाश करने का वाण है। स्वामी दयानन्द जी की जीवन लीला समाप्त करने के लिये बड़े–बड़े योद्धा, जिनको अपने बल पर पूरा अंहकार था, भेजे गये। पर किसी की तलवार को हाथ में पकड़ कर स्वामी जी ने दो टुकड़े कर दिए, किसी को वैसे पिछाड़ डाला। मनुष्य अंहकार को समाप्त करने के लिये अपने से बड़ों को देखे तो उसे ज्ञात होगा कि वहं तो कुछ भी नही और ब्रह्म ज्ञानी ही ऐसा उपदेश कर सकते हैं।

अष्टम् अध्याय

परमानन्द

ओ३म् ऊर्ध्वादिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः।

मनसा परिक्रमा का यह छठा और अन्तिम मंत्र है। पर भी यहां अधूरा लिखा गया है। केवल उतना भाग ही लिखा गया है जितना शेष मंत्रों से भिन्न है। मंत्र के आरम्भिक शब्द हैं –

ऊर्ध्वादिग् –

ऊर्ध्वा का अर्थ है ऊपर की   दिग् का अर्थ है दिशा।

ऊर्ध्वादिग् का अर्थ है ऊपर की दिशा। ऊर्ध्वा गति का अर्थ सबसे ऊंची पराकाष्ठा की अवस्था है। ऊपर की दिशा का अर्थ है मानव के ऊंचा उठने की दिशा। मोह से, लोभ से, अंहकार से, क्रोध, द्वेष से बहुत ऊंचा उठना और इन व्यसनों और अवगुणों को नीचे छोड़ जाना। आचार–व्यवहार में, दान में, परोपकार में, स्नेह में ज्ञान में ऊंचा हो जाना, सुख को छोड़ आनन्द की प्राप्ति करना, परमानन्द की जिज्ञासा रखना और उस अनन्त से नाता जोड़ना।

प्रायः मनुष्य एक ऐसे भवन में रहता है जिसके तीन कमरे हैं। हर कमरे का फर्श संगमरमर के पत्थर का बना हुआ है पर किसी कमरे की भी छत्त नही। यह चमकदार संगमरमर का पत्थर क्या है ? मोह ही तो है। जैसे यह पत्थर देखने मे बहुत अच्छा लगता है वैसे ही मोह बहुत अच्छा लगता है। पर इस कमरे की छत्त नही। एक ही वर्षा की बोछार से फर्श गीला हो जाता है और व्यक्ति इन्ही पत्थरों पर गिरकर अपनी कोई हडड़ी पसली तुड़वा बैठता है। व्यक्ति एक ही घटना से बुरी तरह घायल हो जाता है। माता पिता बच्चों पर क्या क्या आशायें नही रखते पर जब बच्चे उन आशाओं पर पूरे नही उतरते तो उनका क्या हाल होता है प्रत्येक व्यक्ति जानता है। भवन की दीवारें अंहकार की हैं जिन की कोई नींव नही। थोड़ी सी वर्षा हुई नही कि बिना नींव वाली दीवार गिर जायेगी। जो व्यक्ति भवन में उस दीवार के सहारे बैठा है बीच में दब जायेगा। जो व्यक्ति अंहकार का सहारा लेकर इस संसार में जीता है थोड़ी सी भी आपत्ति आने पर

उसका अंहकार टूट जाता है और वह व्यक्ति आपत्ति के बीच में ही दब कर मर जाता है। अब इन कमरों में क्या–क्या होता है ? पहले कमरे के द्वार का नाम काम है और उस कमरे में केवल भोग–विलास और ऐयाशी होती है। दूसरे कमरे के द्वार का नाम लोभ है जिसमें छल–कपट के द्वारा पैदा की गई सम्पत्ति के अतिरिक्त कुछ नही। तीसरे कमरे के द्वार का नाम है क्रोध और उस कमरे में हर समय झगड़े और फसाद होते हैं। इस भवन का नाम है नरक। मनुष्य काम,
क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार और द्वेष को पल्ले बांध कर नरक में नही रहता तो और क्या करता ? मनसा परिक्रमा के पहले पांच मंत्र कहते हैं कि यदि प्रलोभनों का त्याग करोगे केवल तब ही ऊंचा उठ सकोगे अन्यथा नही। इस नरक रुपी भवन को तोड़ें। यह नही सोचना कि पहले किस कमरे को तोड़ा जाये। जो भी कमरा सामने आये उसको तोड़ते जाओ और सारा महल तोड़ कर रख दो। जिस व्यसन को पहले छोड़ सकते हो छोड़ दो। एक–एक करके सब छोड़ दो। जैसे–जैसे महल गिरता जायेगा जगह साफ होती जायेगी मन पवित्र होता जायेगा।

बृहस्पतिः अधिपति

बृहस्पति का अर्थ है बड़ों का बड़ा स्वामी ज्ञान का अधिष्ठाता वाणी का स्वामी विद्या का गुरु महान पालक है। ऐ मानव जब तुमने नरक रुपी महल को तोड़ दिया तो इस भूमि को खाली न छोड़ देना।

मानव तू उस प्रभु की शरण में ज्ञान प्राप्त कर। उस भूमि में जिसमें तूने नरक रुपी महल बनाया था खेती कर ले। कुछ ऐसी वस्तुओं के बीज डाल जिससे तेरा कल्याण हो तेरी सन्तान का कल्याण हो। जैसे किसान खेत में कभी कपास उगाता है, कभी गेहूं तो कभी गन्ना, कभी मक्की, कभी जवार तो कभी पटसन, कभी फल, कभी फूल। पर जो भी उगाता है लाभदायक उगाता है। उसी तरह तूं भी मानव रुपी मिली धरती में कोई अच्छा लाभदायक बीज डाल। सुकर्मो का, स्नेह का, पवित्रता का, मित्रता का सहानंभूति का, दर्द बांटने का, दया का, परोपकार का और फिर इस खेती से जो उपज होगी उसको देखकर बृहस्पति, जो तेरा स्वामी है, तुझे हर दुःख से निकाल कर परमानन्द की सीमा तक पहुंचा देगा।

टालस्टाय प्रातः रोज भ्रमण को जाते थे। मार्ग में प्रतिदिन एक भिखारी मिलता था। उसे कुछ न कुछ दे देते थे। ऐसा दिन प्रतिदिन ही होता था। एक दिन वह घर से निकले तो संयोगवश उनका पर्स किसी दूसरी कमीज में रह गया। वह भिखारी मिला तो हमेशा की तरह जेब में हाथ डाल कर देखा तो पर्स नही था। बोले,''भाई आज तुम्हें कुछ नही दे सकता आज मैं अपना पर्स घर भूल आया हूं ''। इन शब्दों को सुन कर भिखारी ने कहा कि आपने मुझे जो आज दिया पहले कभी नही दिया। मुझे आज जो मिला है उससे मुझे सब कुछ मिल गया। पहले आप मुझे पैसे देते थे उनका उतना मूल्य न था। आज तुमने मुझे भाई कह दिया। इतना अमूल्य प्रेम पाकर बाकी ओर क्या रह गया। लगा लो किसी निर्धन को गले। किसी सिसकती बहन के उजड़ते सुहाग को बचा लो जो कि हस्पताल में केवल इसलिये मर रहा है क्योंकि उसके पास दवाई के लिये धन नही। किसी अनाथ बालक को सहारा दे दो। उसे भी शिक्षा की आवश्यकता है। उसके मो–बाप होते तो वह भी पढ़ जाता। तुम उसके मां–बाप तो नही बन सकते उसको शिक्षा सुविधा ही दे दो।

श्वित्रो रक्षिता

श्वित्रो का अर्थ है श्वेत सत्यज्ञान। साधक निष्कलंक निर्विकार हो जाता है। मनुष्य की चादर सफेद है। कहीं दाग न लग जाये, कहीं यह चादर चित्तकबरी न हो जाये इस बात से डरने की आवश्यकता है। मनुष्य ने नरक रुपी महल तोड़ कर अच्छा बीज डाल कर खेती की थी। कहीं कोई ऐसा पौधा न निकल जाये जो बहुमूल्य फसल को खा जाये। बड़ी साव –धानी की आवश्यकता है। यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार आदि द्वेष बड़े लुभावने होते हैं। मनुष्य जल्दी इनकी तरफ खिंच जाता है और दोबारा फंस जाता है इसी चक्रव्यूह में।

पुराणों में एक कथा आती है कि एक बार भगवान कृष्ण के पास नारद मुनि जी गये और कहने लगे कि मनुष्य माया जाल में कैसे फंसता है और कैसे निकलता है ? भगवान कृष्ण ने कहा कि कल मेरे साथ भ्रमण को चलना आपके प्रश्न का उत्तर दूंगा। अगले दिन दोनो प्रातः भ्रमण को निकल पड़े। रास्ते में भगवान कृष्ण नारद मुनि को सम्बोधित करके कहने लगे कि मुझे प्यास लगी है, मेरे लिये किसी स्थान से जल लेकर आओ। नारद मुनि जल की खोज में चल

पड़े। एक कुंआ दिखाई दिया। वहां एक सुन्दर युवती जल पी रही थी। नारद जी उसे देखकर मुग्ध हो गये। कृष्ण जी के लिये जल लाना तो भूल गये, उस युवती के साथ उसके घर चल दिये। वहां जाकर उस युवती के पिता के समक्ष प्रस्ताव रखा कि मैं आपकी बेटी से विवाह करना चाहता हूं। पिता ने स्वीकार तो कर लिया पर एक शर्त रखी कि नारद मुनि को उनके घर रहना पड़ेगा। नारद मुनि ने बात मान ली। रहते रहते युग बीत गये। उनके यहां सन्तान भी पैदा हो गई। एक दिन बड़ा भारी तूफान आया। गांव में बाढ़ आ गई। नारद जी पत्नी एवं बच्चों को लेकर छत्त पर चढ़ गये। पानी और बढ़ता गया। यहां तक कि सारा मकान ऊपर छत्त तक पानी से भर गया। धीरे–धीरे जल की मात्रा और बढ़ी। पहले बच्चे डूब गये फिर पत्नी भी डूब गई। नारद जी के भी नाक तक पानी आ गया। इतने में उन्हे याद आया कि वह तो कृष्ण जी के लिये जल लेने निकले थे। जल का प्रकोप कुछ कम हुआ तो कृष्ण जी के पास पहुंचे। पहले क्षमा याचना की फिर अपने उसी प्रश्न का उत्तर पूछा। कृष्ण जी ने उत्तर दिया जो घटना तुम्हारे साथ घटी वही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। तुम सुन्दर स्त्री से आकर्षित होकर मुझे भूल गये थे। भूल गये कि तुम्हें किसने क्यों भेजा है ? ठीक यही हाल मानव का है। भूल जाता है कि किस ध्येय को लेकर मनुष्य का चोला लेकरइस ब्रह्मण्ड में आया है। तुम भूल गये कि तुमने वापिस भी जाना है। तुम अपनी रास लीला और परिवार में मुग्ध हो गये। मनुष्य भी इस संसार में आने के बाद विषयों में पड़ कर भूल जाता है कि उसे वापिस भी जाना है। खो जाता है सांसारिक चक्रों में। फिर जब पत्नी की मृत्ये हो गई, बच्चे मर गये, पानी सिर तक पहुंच गया तब तुम्हें मेरी याद आई। इसी प्रकार मनुष्य को जब कोई धक्का लगता है, कोई मानसिक चोट पहुंचती है या जब ऐसे हालात पैदा हो जाते हैं कि पानी सिर से गुजरने लगता है तब उसे भगवान की याद आती है कि मैं संसार में क्यों आया था। मैंने अपना लक्ष्य पूरा भी किया है या नही।

सो यह माया लुभावनी है। इसके जाल से व्यक्ति दूर रहे अन्यथा यह ऐसा बांधेगी कि छूटना मुश्किल हो जायेगा। जब तक पानी सिर से न गुजरे यह छोड़ेगी नही। खाती ही जायेगी, मिटाती ही जायेगी, फंसाती ही जायेगी, रुलाती ही जायेगी।

वर्षम् इषवः

मानव ने पहले नरक रुपी महल तोड़ा। लोभ, मोह, अंहकार, काम, क्रोध, द्वेष से छुटकारा पाया। फिर धरती पर सुकर्म का बीज डाला। बृहस्पति की कृपा से अपनी रक्षा की ताकि उसकी चादर मैली न हो जाये। पर खेती फिर भी सूख जायेगी, जब तक उसके खेत को पानी नही मिलेगा। वर्षा ही इसको हरा भरा रख सकती है। वर्षा आयेगी तो बीज फूटेगा, कोंपल बनेगा, पत्तियां निकलेंगी, फूल बनेंगे, फल बनेंगे। वर्षा फालतू मिट्टी को दबा देगी। वर्षा आने पर सारी भूमि भीग जायेगी। हरियाली ही हरियाली दिखाई देगी और वह भूमि सबके दिलों को सुहावनी और लुभावनी लगेगी। ऐसे ही मनुष्य स्वाध्याय के जल से वेदों की वर्षा के माध्यम से उसी अवस्था को प्राप्त करता है। प्रभु का भक्त इस अवस्था को प्राप्त करके भक्ति रुपी अमृत से भीग जाता है। वह अपने ही जीवन में जीवन मुक्त, बेलाग और हरा–भरा हो जाता है। तब वह विषयों का दास नही रहता बल्कि उनका स्वामी हो जाता है।

नवम् अध्याय

कृतज्ञता

तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नम रक्षितृभ्योनम इषुभ्यो नम एभ्योऽस्तु।

मनसा परिक्रमा के छः के छः मंत्रों में पहले वह शब्द हैं जिनकी तुतीय से अष्टम अध्याय में चर्चा की गई है। जिनका विवरण द्वितीय अध्याय के शीर्षक में दिया गया है। ऊपर लिखे शब्द मनसा परिक्रमा के हर मंत्र में पाये जाते हैं। हर मंत्र में क्यों इनका वर्णन है ? क्योंकि मंत्र के इस भाग के शब्द कृतज्ञता की भावना को प्रकट करने के प्रतीक हैं। जो व्यक्ति जो शक्तियां हमारा मार्गदर्शन करती हैं, हमें लोभ, मोह, अंहकार से छुड़ाती हैं, उनके प्रति आभार प्रकट करना एक शिष्टाचार है और यह शिष्टाचार इस मंत्र के माध्यम से हमें ज्ञात होता है। केवल इस मंत्र में ही नही बल्कि संध्या के अन्तिम मंत्र में भी नमन के भाव हैं।

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शंकराय च मयस्कराय च
नमः शिवायः च शिवतराय च।।

जिसका अर्थ है :–

नमः = नमस्कार होवे
शम्भवाय = कल्याण करने वाले प्रभु के लिये
च = और
मयोभ्वाय = सुख प्राप्त कराने वाले प्रभु के लिये
च = और
नमः = नमस्कार होवे
शंकराय = कल्याण करना जिसका स्वभाव है, ऐसे प्रभु के लिये
च = और
मयस्कराय = सुख करना (देना) ही जिसका स्वभाव है

ऐसे प्र:भु के लिये

च = और

नमः = नमस्कार होवे

शिवाय = कल्याण करने वाले प्रभु के लिये

च = और

शिवतराय अति कल्याण करने वाले प्रभु के लिये

च = और

भावार्थ :– उपास्क को प्राप्त कराने वाले और सुख देने वाले प्रभु के लिये हमारा नमस्कार है। भक्तों का कल्याण करना और सुख करना ही जिसका स्वभाव है, ऐसे प्रभु के लिये हमारा नमस्कार है। उपरोक्त मंत्र में केवन प्रभु के लिये नमस्कार की भावना है, परन्तु मनसा परिक्रमा के मंत्रों में प्रभु के अतिरिक्त हर उस स्वामी रक्षित एवं इषवः के लिये जिनसे हमें विषयों से दूर रहने की प्रेरणा मिलती है, के प्रति भी नमन की भावना है।

जरा मनसा परिक्रमा के मंत्रों के इस भाग को जो सब मंत्रों में पाया जाता है, पर भी विचार करें।

तेभ्यः = उनके लिये

नमः = नमस्कार है

किनके लिये ?

अधिपतिभ्यः = स्वामी के लिये

नमः = नमस्कार है

किस स्वामी के लिये ?

पहले मंत्र में शब्द थे अग्नि अधिपति। मोह को देर करने वाले उस प्रभु के लिये जो बन्धन रहित है, जो स्वयं मुक्त है, ज्ञान स्वरुप है उस अग्नि को मेरा बार–बार नमस्कार है। दूसरे मंत्र में लोभ से दूर रहने के लिये इन्द्र को स्वामी बताया गया है जो ऐश्वर्यो का स्वामी है। तीसरे मंत्र में वरुण को स्वामी के नाम से सम्बोधित किया गया है। उस स्वामी को मेरा बार–बार नमस्कार है जो वरुणीय है, सब संसार को आच्छादित करने वाला है, सबसे महान है और जल का देवता है।

चौथे मंत्र में क्रोध से बचने के लिये सोम को स्वामी बताया गया है। सोम सकल जगत का उत्पादक प्रभु शीतल स्वभाव वाला कुपालु पिता है, उसके लिये नमस्कार है। पांचवे मंत्र में अंहकार से बचने के लिये विषणु को स्वामी कहा गया है। उस विष्णु को जो सर्वव्यापक है, सर्वाधार है, घट–घट में व्यापक है, सबका पालन–पोषण करने वाला हैउसको मेरा नमस्कार है और छठे मंत्र में ऊंचा उठने के लिये बृहस्पति को स्वामी के रुप में सम्बोधित किया गया है। उस पिता के लिये जो महान है, जो बड़ों का स्वामी है, ज्ञान का अधिकारी है, वाणी का स्वामी है, विद्या का गुरु है उस बृहस्पति को नमस्कार हो। और तत्पश्चात

रक्षितृभ्य = रक्षक के लिये

नमः = नमस्कार

कौन रक्षक ?

पहले मंत्र में मोह से बचने के लिये असित है। दूसरे मंत्र में लोभ से बचने के लिये तिरश्चि ''कैसे बचा जाये ''। टेढ़ी चालें न चलते हुये मोह से बचा जा सकता है। तीसरे मंत्र में काम से बचना उतना ही आवश्यक है जैसे अजगर से बचना, पृदाकु रक्षिता। चौथे मंत्र में क्रोध से बचने के लिये स्वजो अपने आप पर नियन्त्रण और पांचवे मंत्र में अंहकार से बचने के लिये कल्माषग्रीवो डर कर रहना कि गर्दन सदा अकड़ी न रहे और छठे मंत्र में ऊंचा उठने के लिये श्वित्र कि कहीं सफेद चादर पर कोई दाग न लग जाये। इन युक्तियों से ही इन व्यसनों से रक्षा हो सकती है। इन युक्तियों के प्रति मंत्र में सम्मान प्रकट किया गया है। और फिर

इषुभ्यः = इषुओं के लिये

नमः = नमस्कार

इषु कौन ?

पहले मंत्र में मोह के लिये आदित्य, दूसरे मंत्र में लोभ के लिये पित्तर, तीसरे मंत्र में अंहकार के लिये विरुध, चौथे मंत्र में क्रोध के लिये अशनि और पांचवें में अंहकार के लिये वीरुध, छठे मंत्र में ऊंचा उठने के लिये वर्षा। इन सब इषुओं को बारम्बार नमस्कार है, और अन्त्त में शब्द है –

ऐभ्य = इनके लिये

अस्तु = होंवे

हे प्रभु मेरी यह भावना इन सबके लिये ऐसी ही होवे। मैं सदा इन व्यक्तियों, शक्तियों,महापुरुषों, ज्ञानियों, योगियों का ऋणी रहूं।

नमन कां अर्थ केवल हाथ जोड़ कर झुकना ही नही या केवल सम्मान करना ही नही, अपितु जिस व्यक्ति को मनुष्य नमस्कार करता है, जिसके आगे झुकता है, जिसको प्रकाश स्वरुप मानता है, जिसको अपना पथ–प्रदर्शक समझता है उसके आगे अपनी त्रुटियों को स्वीकार करना

To confess is the want of many,
but it is within the powers of few.

भूल को स्वीकार करने की इच्छा बहुत से लोगों में होती है, परन्तु स्वीकार करने का साहस किसी में ही होता है। जिस व्यक्ति को आप नमन करते हैं, उसके सामने अपनी त्रुटियां, भूलें, कमियां बताओ और उनसे उनका समाधान पूछो। खाली माथा टेकने से कुछ नही होगा। और अन्त में फिर वही शब्द आते हैं –

यो ऽ स्मान द्वेष्टि यम् वयं द्विष्मस्त वो जम्भे दध्म:

जिसका पूरा विवरण अध्याय द्वितीय में दिया गया है कि भगवान जो हमसे द्वेष करे या जिससे हम द्वेष करें उसको तेरी न्याय व्यवस्था में छोड़ें। हर मंत्र में द्वेष का जिक्र है क्योंकि द्वेष माँ है सब व्यस्नों की। इसलिये बार–बार द्वेष को छोड़ने के लिये जोर दिया गया है। पंभु हम में सामर्थ्य पैदा करो कि हम इस चक्रव्यूह से निकल कर तेरी कृपा के सुपात्र बनकर आनन्द को प्राप्त कर सकें

इति ओ३म्।

आवश्यक सूचना

वैदिक साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के माध्यम से पांच सौ रूपये या उससे अधिक दान देने वाले महानुभाव अपने किसी प्रियजन, मित्र, सम्बन्धी को शुभ कामनाएं, आकांक्षाएं, बधाई सन्देश आर्शीवाद दे सकते हैं। अथवा किसी शुभ चिंतक एवं हितैषी का अभिनन्दन करने हेतु प्रसन्नता की भावना या आभार प्रकट किया जा सकता है। इसी प्रकार किसी दिवगंत आत्मा के प्रति श्रद्धा के सुमन भी अर्पित किये जा सकते हैं।

प्रकाशक

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

लेखक परिचय

आनन्द आभिला

वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर हरिद्वा

पूर्व नाम : सुभाष चन्द्र जसू

जन्म तिथि :–24–10–1937

जन्म स्थान :– फाजिलका, जिला फिरोजपुर (पंजाब)
पिता का नाम :– श्री हरि कृष्ण दास
शिक्षा : मैट्रिक :– डी. ए. वी. हाई स्कूल फाजिलका
बी.ए. :– एम.आर . कालिज , फाजिलका
एल.एल.बी. :– यूनिवर्सिटी ला कालिज, जालंधर
एम. ए. :– पंजाब विश्व विद्यालय चंडीगढ़ (राज–नीति शास्त्र)
व्यवसाय :– वकालत (एडवोकेट)
मुख्य अभिरूचि :– लेखक, प्रकाशन एवं व्यख्यान द्वारा वेद प्रचार

कार्य क्षेत्र :–

प्रबन्धक डी.ए.वी. स्कूल फाजिलका
प्रधान आर्य समाज फाजिलका
कार्यकारिणी सदस्य आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब)
पूर्व प्रधान लायन कल्ब फाजिलका (विशाल)
लायन इंटरनेशनल के जिला 321–F के
गर्वनर की कार्यकारिणी के विशेष आमंत्रित सदस्य
वानप्रस्थ दीक्षा तिथि एवं स्थान :– 25–10–95 आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर
लेखक एवं प्रकाशक :–18 पुस्तकें
पत्र व्यवहार के लिए स्थाई पता:– **कृष्ण निवास फाजिलका।**

Printed & Designed by Gandhi Printers, Fazilka ☎ 61870, 61170